CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

भामिनीविलास.

भाषाटीकासहित.

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

श्रीमत्पंडितराजजगन्नाथप्रणीत

भामिनी-विलास।

नामक संस्कृत काव्यका अवधमंडलांतर्गत रायबरेलीप्रांतस्थदौलतपुरनिवासी महावीर प्रसाद द्विवेदी हेड टेलीग्राफइन्स्पेक्टर आय. यम. रेलवे झांसी विरचित मूलश्लोकसहित देवनागरी

भाषानुवाद।

इसको

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासने

अपने "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापेखानेमें

छापकर प्रसिद्ध किया।

संवत् १९८२, शके १८४७.

कल्याण-मुंबई.

सब हक्क यन्त्राधिकारीने स्वाधीन रक्खा है.

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

श्रीमान् ।

पंडित मुरलीधर मिश्र

डिप्युटी इन्स्पेक्टर आफ् स्कूलस्, कानपुरको

भामिनीविलास नामक सुप्रसिद्ध संस्कृत

काव्यका यह देवनागरी

भाषांतर

महावीर प्रसाद द्विवेदीने

नम्रतापूर्वक अर्पण किया ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

BHAMINI VILAS

BY

PANDITRAJ JAGANNATH

EDITED WITH

A DEVA NAGARI TRANSLATION

BY

MAHAVIRA PRASAD DWIVEDI

HEAD TELEGRAPH INSPECTOR

I. M. RAILWAY

JHANSI

PRINTED AND PUBLISHED

BY

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

at the Shri-Venkateshwar Steam Press,

KHETWADI 7th STREET KHAMBATA LANE,

BOMBAY.

1925

श्रीलक्ष्मीधर - विद्यामन्दिर
देवप्रयाग (गढ़वाल-हिमालय)
व्यवस्थापक- पं. चक्रधरजोशी

(All right recerved)

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

TO

PUNDIT MURLIDHAR MISRA

DEPUTY INSPECTOR OF SCHOOLS

CAWNPORE

THIS

TRANSLATION OF THE FAMOUS POEM

BHAMINI-VILAS

IS

RESPECTFULLY DEDICATED

BY

MAHAVIRA PRASAD DWIVEDI.

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

भूमिका।

किसी नूतनग्रंथका वाचन आरंभ करनेके पहिले ग्रंथकारका जीवन-चरित्र, उसका काल, ग्रंथनिर्माणकारण इत्यादि विषयोंके जाननेकी उत्कंठा सर्व रसज्ञ वाचकोंके मनमें स्वभावतः आविर्भूत होती है। परंतु, भारतवर्षमें कवियों, राजाओं तथा अपर प्रसिद्ध पुरुषोंके जीवनचरित्र लिखनेकी विशेष परिपाटी प्राचीनकालमें न होनेसे वाचकोंकी मनस्तृप्ति इस विषयमें कहांतक सुफल होती है यह बहुधा सर्व ग्रंथवाचकसमूहको विदितही है। 'इतिहास' के लाभ और उसके ग्रथनकी प्रथा हमारे पूर्वज न जानते थे यह कहना योग्य नहीं, क्योंकि, 'राजतरंगिणी' 'श्रीहर्षचरित' 'विक्रमार्कदेवचरित' आदिक इतिहास गीर्वाण भाषामें अद्यापि विद्यमान है। 'राजतरंगिणी' में काश्मीर देशका इतिहास है, इसमें भिन्न भिन्न पंडितोंने अकबर बादशाहके समयतकका भली भाँति वर्णन किया है। दूसरे दो अपने अपने नामके राजाओंके चरित्रदर्शक हैं और अनुक्रमसे 'बाणभट्ट' और 'बिह्लण' के रचे हुए हैं। 'इतिहास' शब्दमें जिनका समावेश होसके ऐसे केवल यही ग्रंथत्रय मेरे अवलोकनमें आये हैं। हमारे पूर्वजनोंने कितने और कौन कौन ऐतिहासिक ग्रंथ निर्माण किये इसका पता लगाना इस समयमें बहुधा असंभव होगया है प्रस्तुत कालमें इस विषयके ग्रंथोंके उपलब्ध न होनेका कारण या तो अनेक मतांतरवालोंके द्वारा या अन्यदेशीय राज्यसत्तात्मक फेरफारके संचारसे नष्ट होजाना है। अथवा यह कहना भी कुछ अंश अयोग्य न होगा कि हमारा देश पूर्वकालमें स्वतंत्रावस्था-नमें रहा और इसीसे वर्णन योग्य चमत्कारिक कथा हमारे संस्कृत विद्वानोंको न मिली कि, जिससे वे किसी मनोहर इतिहासको जैसे 'ग्रीस' देशके महाकवियोंने रचा वैसे निर्माण करते। 'राजतरं-गिणी' में इतिहासप्रशंसात्मक इस प्रकारका लेख है:-

कोऽन्यः कालमतिक्रांतं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः।
कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः॥

२ 'भामिनी विलास' की भूमिकामें इतिहासपै निबन्ध लिखते

---

१ रम्य अर्थसृष्टि निर्माण करनेवाले प्रति ब्रह्मदेवही ऐसे जो कवि उनके अति-रिक्त पुरातन कालकी स्थिति पुनर्वार दृष्टिगोचर करनेकी सामर्थ्य और किसमें है?

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

बैठना मेरा अभिप्राय नहीं, परंतु काव्यके कर्ता पंडितेन्द्र जगन्नाथरायके चरित्रका दिग्दर्शन कराना है इससे इतिहासके विषयमें कुछ लिखना मैंने योग्य समझा ।

३ वस्तुतः पंडितराजके विषयमें चार अक्षर लिखनेका मार्ग रहाही नहीं यह कहना अयथार्थ है ऐसा नहीं । हां उनके ग्रंथोंसे कुछ अत्यल्पवृत्त उनका जाना जा सकता है परंतु जो तत्त्व जीवनचरित्रमें उपलब्ध होता है वह कहां और महान् प्रयत्नसे ग्रंथोंके कथानकादिसे एकत्र की गई वार्ता कहां ?

४ कवियोंके जीवनवृत्त विस्तृत होने और उनके पश्चात् तद्विषयक ज्ञान प्राप्त होनेके केवल दो मार्ग हैं । एक तो यह कि उनके चरित्र दूसरोंके द्वारा लिखा जाना अथवा जीवनावस्थामें अपनी दिनचर्या स्वयं लिखना, दूसरा यह कि अपने ग्रन्थमें स्वविषयक लेख यदि सविस्तर नहीं तो संक्षेपही प्रकाशित करना प्रथम प्रकारका तो नामही न लेना न तो किसी कविने दिनचर्या लिखी और न किसी विद्वान्ने उसके चरित्र प्रगट करनेके हेतुसे अपनी कुशल लेखनक्रियाका व्यय किया । जिन महानुभावोंसे विद्याध्ययन करके षट्शास्त्रमें पारंगत हुए और जिनके प्रसादसे अद्वितीय काव्य, नाटकादिक निर्माण करनेकी शक्ति पाई उनका नाम जीवित रखने तथा उनके शुभचरित्र वर्णन करनेकी अभिरुचिने हमारे पूर्वजोंके हृदय न उत्कंठित किये यह कितना आश्चर्य है ? मनुष्यजातिके वर्णनमें सरस्वतीभांडारका अपव्यय होगा यह समझ उस विषयको न स्पर्श किया ऐसा तो नहीं ? दूसरे प्रकारमें भी एक दो ग्रंथकारोंके अतिरिक्त बहुधा किसीने लेखनी नहीं उठाई । कविकुलगुरु कालिदासने अधिक तो क्या वरन अपना नामतक निज ग्रंथोंमें नहीं दिया । उसकी कीर्तिके प्रथमहीसे दिगंतरमें प्रसरित होनेके कारण उसके ग्रंथ समस्त राष्ट्रमें अत्यंत प्रिय व वंद्य जो न होजाते और जो उसने नाटक न रचे होते तो उसके नामके लोप होजानेका भी संभव था । श्रीहर्ष, भवभूति आदिक संस्कृत कवियोंने अपनी कुलकथा अत्यंत संक्षेप रीतिसे अपने ग्रंथोंमें दी है परंतु केवल पिता, माता, नगर इत्यादिका नामोल्लेख कितना अर्थप्रद है इसका

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अनुमान सहजही हो सकता है। निजकृत 'श्रीकंठचरित' 'हर्षचरित' 'विक्रमार्कदेवचरित' में क्रमसे 'मंखक' 'बाण' और 'बिल्हण' कवियोंने अपना सविस्तर वृत्तांत दियाहै और इसीसे स्वविषयक इतिहास लेखन-प्रणालीमें इन्हीं कवियोंको अग्रगण्य समझना चाहिये। स्वइतिहास लेखानुयायी चाहे और भी कवि हों परंतु संस्कृतभाषाके जितने चाहिये उतने ग्रन्थ मेरे निरीक्षणमें न आनेसे इस विषयका अधिक ऊहापोह करना मेरी शक्तिगोचर नहीं। प्रस्तुत शताब्दीमें भाषाकवि कुछ सचेत हुए हैं और अपने अपने ग्रंथमें स्ववृत्तवर्णन विषयक उल्लेख करने लगे हैं। हमारे भाषा कविपुंगव 'सूरदास' 'तुलसीदास' आदिकने अपने अपने ग्रंथोंमें मनका संबोधन कर निजनाम निर्देश ठौर ठौरपै किया है; परन्तु उनका अनुकरण करके सांप्रत पद्यकार अब एक विचित्र प्रथाको उत्तेजित कर रहे हैं। यह प्रति पद्यमें निज नामकथन प्रयोग है। कहीं कहीं तो इस नामकथनकी अत्यंतही निर्भर्त्सना हुई है। नामोल्लेख विना कवित्वके हरण किये जाने और अन्य कविके नामसे प्रचार होनेका भय है इस प्रकारकी जो कोई शंका करै उसका यही एक मात्र उत्तर है कि जिसको अन्यकृत कवित्वके अंतर्गत अपना नाम नियोजित करनेकी शक्ति होगी क्या उसे दूसरेके नामको निकाल अपने नामके स्थापित करने शक्ति न होगी? कदाचित् वाचक ऐसा आक्षेप करैं कि जीवन चरित्र सम्बन्धीय लेख यदि इतना श्रेयस्कर है तो मैंने स्वयं उसका अनुकरण क्यों न किया? इस विषयमें मुझे इतनाहीं कहना है कि एक तो मैं ग्रंथकार अथवा कविवर्गकी गणनामें नहीं गिना जा सक्ता क्योंकि तदर्थ जिन वस्तुओंकी आवश्यकता है वह सब मुझमें नहीं दूसरा यह कि ग्रंथकार और भाषांतर कर्तामें महदंतर है तस्मात् मुझ सदृशके नाम ग्रामादिकका पुस्तकके प्रथम पृष्ठपै उल्लेख होनाही बस है।

९ उपरोक्त प्रतिपादनसे यह सिद्ध हुआ कि प्राचीन कालमें नामोल्लेखन तथा इतिहासरचन प्रथाके न होनेसे हमारे अनेक आदरणीय कवियोंका कुछ भी यथायोग्य वर्णन नहीं हो सकता। हां भोजप्रबंधमें इस विषयकी वार्ता है परंतु वह कहांतक प्रामाणिक है यह हमारे संस्कृतज्ञ विद्वानोंको विदित ही होगा। यदि ख्रिस्तीय संवत् ७०० के लगभग चीनदेशका हुएन संग नामक यात्री भारतवर्षमें न आता और उस सम-

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

यके बौद्ध मतानुयायी श्रीहर्ष राजाका वर्णन अपने ग्रंथमें न करता तो हमारे प्रसिद्ध ' कादंबरी ' कार संस्कृत कवि बाणभट्टके कालका निर्णय होना दुस्तर हो गया होता। इस समयमें एक अत्यंत आश्चर्यजनक बात यह कर्णगोचर क्या दृग्गोचर हो रही है कि हमारे अनेक अमूल्य संस्कृत ग्रंथ श्वेतद्वीपस्थ मुख्य मुख्य नगरोंसे प्रकाशित होने और अपने आप भूमिकामें प्रकाशकोंकी प्रकाशित लेखनीसे स्वोत्पादक कवियोंके जीवनचरित्र भी चित्र विचित्र गुणदोषनिरीक्षणादिक प्रकार पूरित लेखोंमें स्वदेशवासियोंको सुनाने लगे हैं ! क्रमशः प्राप्त होने-वाले हमारे देशके मूर्खस्वरूपी राहुसे भयभीत होकर हमारा माननीय पुरातन ग्रंथसमुदायरूपी चन्द्र द्वीपके प्रधान पुस्तकालयोंमें निज मान तथा कलेवर रक्षणार्थ तो नहीं पलायन कर गया ? जो हो, अब मैं इस विषको यहीं समाप्त कर कतिपय पंक्तियोंसे पंडितराज जगन्ना-थरायका आदर करूंगा क्योंकि वैसा शीघ्र ही न करनेसे वाचक मेरे ऊपर निबंधविरुद्ध लेखनदोषका आरोप करेंगे ।

६ प्रस्तुत ग्रंथकारका जीवनचरित्र न तो किसीने लिखा और न स्वयं कविने स्वविषयक स्वतंत्र पुस्तकरूप कुछभी कहा इससे उसके ग्रंथों तथा उसकी उन आख्यायिकाओंसे जो आज पर्यंत श्रुतिपथ प्रवाहित हो रही हैं जितना वृत्त उपयोगी उद्धृत हो सकेगा उतना सुव्य-वस्थित वर्णन किया जायगा। एक वृद्ध तैलंग देशवासी पंडित जिसका और मेरा दैवयोगसे समागम हुआ और जिससे कई बातें जगन्नाथ-रायविषयक मैंने सुनीं वेभी इसीके अन्तर्गत लिखी जायँगी ।

मैंने पंडितराजकृत गंगालहरीके भाषांतरके उपक्रममें ग्रंथकारविष-यक एक लघु लेख दिया है परन्तु इस स्थलमें जहांतक संभव है तहां-तक विशेष २ बातोंका उल्लेख करनेका विचार है ।

७ यह अर्वाचीन महान् पंडित किस किस स्थानका निवासी था यह निर्णय करना तो सर्वथैव अशक्य है, परंतु इतना कह सकते हैं कि उसका जन्मदेश तैलंग होगा क्योंकि उसके ' रसगंगाधर ' नामक ग्रंथमें यह श्लोक पाया जाता है ।

पाषाणादपि पीयूषं स्यंदते यस्य लीलया ।
तं वंदे पेलुभट्टाख्यलक्ष्मीकांतं महागुरुम् ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

एतत्कृत प्राणाभरणसंज्ञक ग्रंथमेंभी इस प्रकारका अंतमें एक श्लोक है—

तैलंगान्वयमंगलालयमहालक्ष्मीदयालालितः
श्रीमत्पेरमभट्टसूनुरनिशं विद्वल्ललाटंतपः ।
संतुष्टः कमताधिपस्य कवितामाकर्ण्य तद्वर्णनं
श्रीमत्पंडितराजपंडितजगन्नाथो व्यधासीदिदम् ॥

इससे स्पष्ट होता है कि उनके पिताका नाम पेठिभट्ट अथवा पेरम भट्ट और माताका लक्ष्मी था। उसने गुरुदीक्षा पिताहीसे प्राप्त की थी इसका पिता महाविद्वान् था. उसने सर्व शास्त्रोंका परिशीलन वाराणसीमें अनेक पंडितोंसे किया था। जगन्नाथरायने विद्याध्ययन अपने पितासे किया और भली प्रकार शास्त्राकलन जब होगया तब दक्षिण भारत वर्षके 'तंजांउर' नामक संस्थानमें जीविका स्वीकार की परंतु वहां उसका अनादर हुआ ऐसा उसके अश्वधाटी काव्यके इस श्लोकसे स्पष्ट होता है।

खंजायितोधिमाति गंजाऽपरोपि बत संजायतेऽत्र धनदः
संजाघटीति गुणपुंजायितस्य न तु गुंजामितं च कनकम् ।
किं जाग्रती जयसि किं जानती स्वपिषि सिंजाननूपुरपदे
तेजोपुरेशि नवकंजाक्षि साधु तदिदं जातु वा किमु शिवे ॥ १ ॥

इस कारण स्वदेश परित्याग करके उसने उत्तरकी ओर पर्यटन किया और भिन्न भिन्न संस्थानोंमें कालक्षेप करता हुआ देहलीकी ओर गया। वहां इससे और एक महम्मदमतानुयायी महात्मासे धर्मविषयक विवाद हुआ जिसमें पंडितराजने अपनी वाक्चातुर्यतासे विजय पाई। इस प्रकार इसकी कीर्ति प्रतिदिन प्रवर्द्धित होने लगी यहांतक कि वह बादशाहका आश्रित नियोजित किया गया जहां उसने स्वविद्याबलसे महान् मान पाया।

८ जगन्नाथरायने देहलीमें फारसी भाषा भी सीखी थी। उसका रचा हुआ संस्कृत-फारसी मिश्रित ग्रंथ सुननेमें आया है। पंडितराज बडे विलासी और रसिक थे। यह उनकी बहुश्रुत आख्यायिका और काव्यरचनारूपसे स्पष्ट विदित होताहै। 'लवंगी' नामक बादशाह-कन्यासम्बन्धीय कहानी दक्षिण भारतवर्षकेसर्व साधारण पंडित जानते हैं। परंतु इस ओर जगन्नाथरायके ग्रंथोंका विशेष प्रचार न होनेसे

१ तंजोर।

CC-0.Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

कदाचित् कोई वाचक उस आख्यायिकासे परिचित न होंगे, इस हेतु, उनके मनोरंजनार्थ उसका संक्षेप वर्णन मैं योग्य समझता हूं। वह इस प्रकार है:-बादशाहको लवंगी नामक एक कन्या किसी राजपूत रानीसे थी। वह सहजही अत्यंत सुंदर थी परन्तु युवावस्थाके आगमनसे मन्मथाधिदेवने उसे अपनी समस्त चातुरीका व्यय करके इतना रमणीय किया कि मानो स्वपत्नी रतिरानीको वृद्धापकाल आनेसे गतयौवना जान, लवंगीहीको अपनी सहचारिणी करना इष्ट समझा। इस कन्याने पंडितराजाकी पांडित्य, तारुण्य, रम्यरूपछटाको सखियोंसे सुन परम विरहाकुल होती हुई अपने नयनरूपी चकोरद्वयको पंडितेन्द्ररूपी कलाधरके दर्शनार्थ नितांत चंचल किया। अनुकूल समय आया परन्तु प्रेक्षणने उसकी व्यथाको द्विगुणित करके यह प्रतिज्ञा करवाई कि मुझ लावण्यलताका अवलंबन इस पंडितकदंबके अतिरिक्त अन्य शाखी होना महान् धर्मसीमाका उल्लंघन करना होगा क्योंकि मैं इसे स्वामीभावसे ग्रहण कर चुकी। किसी समय जगन्नाथराय और बादशाह विलासमंदिरमें 'बुद्धिबल' (शतरंज +) खेल रहे थे कि द्वितीयाभिधानी ÷ जलप्राशनेच्छुक हुए। अवसर पाय लवंगी एक मनोहर लघु कलशको जलप्रपूरित करके जहाँ खेल हो रहा था प्रविष्ट हुई। बादशाहके मानसको वारुणीने अपनाया था इससे उस समय एक

+ यह शब्द 'शत्रुंजय' का अपभ्रंश जान पडता है।

१ वाचक विस्मित होंगे कि विलासमंदिर, जहां बादशाहको मंत्रिवर्ग अथवा स्ववंशके माननीय पुरुषोंके साथ खेलमें निमग्न होना था वहां यः कश्चित् एक पंडितका प्रवेश! परंतु विचार करनेसे भ्रमका शीघ्रही निराकरण हो जायगा। विद्याविलासी जनोंको पंडितों तथा कवियोंसे अधिक, अन्य जन कदापि सुखप्रद नहीं हो सकते। जहां विद्या है वय, वहां जाति, धर्म, धन इत्यादिकका विवेचन नहीं किया जाता। विक्रम तथा भोजराजकी सभामें पंडितको दक्षिण ओर और मंत्रीको वाम ओर स्थान दिये जातेथे।

÷ क्या सच्चे रसिकको अपने पुस्तकालयमें एकाग्र चित्त होकर ग्रंथवाचनका सुख राज्यवैभवके कृत्रिम सुखसे विशेष श्रेयस्कर नहीं है! अतः अधिगतपरमार्थपंडितको राजासे न्यून न समझना चाहिये।

२ अर्थात् बादशाह यह शब्द आंग्लभाषाके लैटर शब्दका स्थानापन्न है।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

विचित्र रंगके तरंग उसके हृदयांतर्गत उल्लसित हुए। लवंगीकी ओर पंडितराजको भी अनिमेषभावसे अवलोकन करते हुए बादशाहने देखा। इन कारणोंसे देहलीनरेश पंडितेन्द्रको उसी वेषमें लवंगीके वर्णन करनेकी आज्ञा दी। तब कविने कहा-

इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुंभा कुसुंभारुणं चारु चैलं वसाना।
समस्तस्य लोकस्य चेतःप्रवृत्तिं गृहीत्वा घटे न्यस्य यातीव भाति ॥[१]

इस अत्युत्कृष्ट वर्णनको श्रवण करके बादशाहने परम प्रसन्नता प्रकट की और जगन्नाथरायसे इच्छानुकूल याचना करनेको कहा। तदनुसार पंडित फिर बोले-

न याचे गजालिं न वा वाजिराजिं न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुंभा लवंगी कुरंगी दृगंगीकरोतु ॥[२]
यवनी नवनीतकोमलांगी शयनीये यदि लभ्यते कदाचित्।
अवनीतलमेव साधु मन्ये न वनी माघवनी विलासहेतुः ॥[३]

इस अद्भुत याचनाको सुनकर बादशाह चकित हुए, परन्तु वचन तो देही चुके थे; लवंगी पंडितराजको समर्पण की। वाचक हास्य करेंगे कि लवंगीका कलश लेकर जगन्नाथरायके सन्मुख प्रवेश करना नितांत असंभव है क्योंकि मुसलमानोंमें परदा विषयक नियम सहज उल्लंघन नहीं हो सकते। न हो सक्ते होंगे; मेरा अभिप्राय इस आख्यायिकाकी सत्यताके निर्णय करनेका नहीं किंतु जो बातें बहुधा विद्वानोंके मुखसे सुननेमें आती हैं उनके लिखनेका है। फिर इस आख्यायिकामें कुछ अर्थ नहीं ऐसाभी नहीं। विना किसी पदार्थकी

---

१ मस्तकपै कुंभको स्थापन करनेवाली और कुसुंभरंगके मनोहर दुकूलसे आभूषित यह सुन्दरस्तनी मानो सर्व संसारके चित्तको हरण करके अपने कलशमें ले जाती हुई शोभायमान है।

२ न मैं गजराजयूथ मांगताहूं, न अश्वराजिकी इच्छा रखताहूं संपत्तिमें मेरा तनिकभी मन नहीं, मस्तकपै घट स्थापन करनेवाली और मनोहर स्तनोंवाली यह कुरंगनयनी लवंगीमुझे अङ्गीकार करै।

३ नवनीतके समान कोमलांगी यवनी यदि शय्यामें प्राप्त होवै तो इस भूतलको मैं परम सुखकर मानूंगा, इन्द्रके नन्दनवनमें विलास करनेका सुख उसके सन्मुख तुच्छ है।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अल्पाधिक स्थितिके तद्विषयक वार्त्ता नहीं प्रचलित होती । अस्तु लवंगीकी प्राप्ति और तज्जनित पंडितराजका स्वधर्मसे हस्त प्रक्षालन काशीस्थ पंडितोंको सहन नहीं हुआ, अतएव जगन्नाथरायको उन्होंने ब्राह्मणपंक्तिसे बहिष्कृत किया । नैराश्यने पंडितेन्द्रको तब तो महान् उदासीनताको पहुँचाया और जैसा सुनते हैं गंगास्तवन द्वारा उनके पातकोंका निराकरण कराया। एतत् सम्बन्धीय आख्यायिका मैंने गंगालहरीके स्वकृत भाषानुवादमें संक्षेप रीतिसे लिखी है इस कारण अब यहां पुनरुक्ति नहीं करता ।

९ जगन्नाथरायके कालनिर्णयमें मतांतर है; कोई कहते हैं कि वह अकबरके समयमें और कोई यह कहते हैं कि शाहजहाँके समयमें हुआ । महाराष्ट्र भाषाकी 'काव्येतिहाससंग्रह' नामक मासिक पुस्तकमें रामदास, वामन इत्यादि कवियोंका काल निर्णय किया गया है जिससे यह विदित होता है कि, जगन्नाथराय शाहजहांके समयमें थे । वामन पंडितने गंगालहरीका समश्लोकी भाषांतर किया है, इससे भी स्पष्ट है कि या तो वह पंडितराजका समकालीन था या कुछ पीछे हुआ । रामदास, वामनादिक शाहजहांके समयमें हुए हैं तस्मात् जगन्नाथरायका अकबरकी सभामें होना असंभव जान पडता है, फिर ' आईन अकबरी ' में लवंगी अथवा पंडित जगन्नाथका कुछ भी वृत्तांत नहीं है; यदि ये उस समयमें होते तो इनकाभी कुछ न कुछ अवश्यमेव उस पुस्तकमें वर्णन किया जाता, क्योंकि उसमें अल्प अल्पसी बातोंका स्पष्टीकरण किया गया है । मुम्बापुरस्थ श्रीयुत पंडित लक्ष्मणरामचन्द्र वैद्यने स्वप्रकाशित भामिनीविलासके उपोद्घातमें पंडितराजके ' आसफविलास ' नामकग्रंथसे कुछ पंक्तियां उद्धृत की हैं, जिनमें प्रस्तुत कवि स्वयं कहता है कि ' पंडितराज ' की पदवी उसे शाहजहांने दी । इन प्रमाणोंसे यह स्थिर हुआ कि जगन्नाथ पंडित खिस्तीय सम्वत् १६२० के लगभग देहलीमें वर्तमान था । वृद्धावस्थामें इसने बहुत काल पर्यंत मथुरा वास किया ।

१० जगन्नाथरायके ग्रंथोंके अवलोकनसे यह तत्काल भासित होता है कि वह परम विद्वान् था । ऐसा सुनते हैं कि राज्यसभामें उसने बहुतेरे पंडितोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया । काव्यमें उसे कितना

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

गर्व था यह भामिनीविलासके अंतिमश्लोकोंसे विदित होता है। संस्कृत कवियोंमें यदि इसकी गणना कालिदास, भारवि, भवभूति आदिकी मालिकामें करें तो मेरी अल्पबुद्ध्यनुसार अतिशयोक्ति न होगी। इस कविने यवनोंके आघातसे शेष रही साहित्य तथा काव्य-विद्याको अपने अप्रतिम ग्रंथोंसे विशेष विभूषित किया । इसको संस्कृत भाषाके वर्णनीय कवियोंकी श्रेणीमें अंतिम समझना चाहिये। खेदका विषय है कि ऐसा 'पंडितराज' राजितिलक 'यवनी नवनीतको-मलांगी' में लीन हो जाय ।

काव्यमाला नामक मुंबईकी मासिक पुस्तकमें इस कविके रचे हुए इतने ग्रंथोंके नाम लिखे हैं:—

१ रसगंगाधर	८ अमृतलहरी
२ यमुनावर्णन चम्पू	९ सुधालहरी
३ रतिमन्मथनाटक	१० करुणालहरी
४ वसुमतीपरिणय नाटक	११ लक्ष्मीलहरी
५ जगदाभरण काव्य	१२ भामिनीविलास
६ प्राणाभरण काव्य	१३ मनोरमाकुचमर्दन
७ पीयूषलहरी	१४ अश्वधाटी काव्य

पंडित लक्ष्मण रामचन्द्र वैद्यने जिसका उल्लेख किया है उस "आसफविलास" का नाम उपरोक्त पुस्तकमालिकामें नहीं आया अनुमान होता है कि काव्यमालाकारको वह उपलब्ध नहीं हुआ ।

जगदाभरणमें शाहजहांके पुत्र दाराशिकोहका वर्णन है और प्राणाभरणमें कामरूपदेशके राजा प्राणनारायणकी यशःप्रशंसा है, जिसे जगन्नाथ रायने कामरूपदेशकी काव्यको श्रवण करके प्रसन्न होकर निर्माण किया था । पीयूष, अमृत, सुधा, करुणा और लक्ष्मी लहरीमें क्रमसे गंगा, यमुना, सूर्य, विष्णु और लक्ष्मीका स्तवन है। अश्वधाटीमें रामनामक अपने पौत्रको सदुपदेश किया है। यमुनावर्णन चंपू, रतिमन्मथनाटक, वसुमतीपरिणयनाटक और मनोरमाकुचमर्दन मेरे अवलोकनमें नहीं आये ।

११ प्रस्तुत कविके ग्रंथोंमें 'रसगंगाधर' नामक साहित्यका ग्रंथ प्रशं-सनीय है। यह हस्तालिखित ही देखनेमें आता था परंतु अब मुद्रित होगया

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

है। इस ग्रंथको पंडितराजने बडी चातुर्य और युक्तिसे गद्यपद्यमय निर्माण किया है। इसमें समस्त विषयोंकी उत्तम प्रकारसे व्याख्या करके अलंकारादिके नूतन उदाहरण अत्यंत रसाल वाणीमें दिये हैं। जगन्नाथरायके कालतक साहित्य ग्रंथकारोंकी यह पर्याय थी कि वह लक्षण अपनी ओरसे लिखते और उदाहरण किसी पुरातन ग्रंथका लेतेथे, परंतु पंडितराजने वैसा करना उचित नहीं समझा। एतद्विषयक 'रसगंगाधर' के प्रारंभमें यह श्लोक है:—

निर्माय नूतनमुदाहरणानिरूपं काव्यं मयाऽत्र निहितं न परस्य किंचित् ।
किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धं कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण+॥

यह कितनी दर्पोक्ति है ? 'रसगंगाधर' में जगन्नाथरायकृत गंगालहरीके भी श्लोक कई स्थलोंमें उदाहरणार्थ आये हैं जिनके देखनेसे एक प्रकारका व्यामोह उत्पन्न होता है कि यदि भागीरथीने जैसा सुननेमें आता है, उन्हें स्तवनानंतर परमधामको पहुँचाया तो यह श्लोक रसगंगाधरमें कैसे प्रविष्ट हुए इस विषयमें विवाद करना ठीक नहीं क्योंकि ज्यों ज्यों अधिक खोज करते हैं त्यों त्यों अधिक शंका उत्पन्न होती जाती हैं अस्तु । 'कुवलयानंदकार' अपय्या दीक्षित जगन्नाथरायके प्रतिपक्षी थे। उनको पंडितराजने इस ग्रंथमें 'कुवाच्य' कहे हैं और अनेक स्थल पै 'कुवलयानंद' का खंडन किया है। प्रसिद्ध 'सिद्धांतकौमुदी' के प्रणेता भट्टोजी दीक्षितपै भी पंडितेन्द्रका कटाक्ष था। 'मनोरमा' नामक कौमुदीकारकी टीकाको मनोरमाकुचमर्दन ग्रंथ लिखके पंडितराजने छिन्न भिन्न किया है ।

पंडितराजकृत ग्रंथोंमें 'भामिनीविलास' के विषय विशेष कहनेका आवश्यकता नहीं क्योंकि उसमें क्या वस्तु है और वह कहांतक आदरणीय है इसका विवेचन वाचक स्वयं करलेवेंगे। यह प्रास्ताविक शृंगार, करुणा और शांत नामक चार विलासोंमें विभक्त है। प्रत्येक पद्य अपना अर्थ अलग अलग देता है, एकसे दूसरा कुछभी संबंध नहीं रखता। यही कारण है कि इस ग्रंथकी प्रतियां मिलती नहीं,

---

+ इस काव्यमें मैंने नवीन उदाहरणोंकी रचना की है; अन्यकृत किंचिन्मात्रभी नहीं ग्रहण किया; कस्तूरिका उत्पन्न करनेकी शक्ति जिनमें होती है वे मृग क्या कभी पुष्पसुगंधकीभी इच्छा करते हैं ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

किसीमें कुछ न्यून है किसीमें कुछ अधिक। एकने एक श्लोक मिला दिया दूसरेने दूसरा निकाल लिया। यह ग्रंथ प्रसंगानुसार कहे गये पद्योंका संग्रह है। कोई कोई कहते हैं, पंडितराजने अपनी स्त्रीके नामानुसार इसका नामकरण किया। कोई यह अनुमान करते हैं कि 'निर्माय नूतनमुदाहरणानिरूपं' इस नियमके प्रतिपालनार्थ 'रसगंगा-धर' में उपयुक्त होनेके हेतु इसकी प्रथमहीसे रचना की गईथी। वस्तुतः यह प्रतिष्ठित ग्रंथ जगन्नाथरायके अनुपम काव्यचमत्कारका अत्युत्कृष्ट नमूना है।

१२ मेरे जाने भामिनीविलासका अभीतक कोई देवनागरी भाषांतर प्रकाश नहीं हुआ। होवे कैसे, हमारे माननीय वाचकोंकी संस्कृत-काव्यमें अत्यंत रुचि है न बडे बडे उपाधिधारी आंग्लभाषाभास्कर एतद्देशीय विद्वानोंको तो 'शेक्सपियर' 'रेनालु मेकाले' से ही अव-काश नहीं मिलता फिर विचारे जगन्नाथ पंडितको कौन पूछे? बता-इये ग्रंथ लिखने तथा प्रकाश करनेका उत्तेजन कैसे होवे हां जो पुस्तकें शिक्षाविभागके डाइरेक्टर महोदयने पाठशालाओंमें प्रचलित कर दीं उनका मात्र अहोभाग्य समझना चाहिये। नहीं तो किसीने चाहे कितनेही परिश्रमसे कैसाही उत्तम ग्रंथ रचा और मुद्रणमें चाहे कितनाही द्रव्य व्यय किया हो बहुधा उसकी प्रतियां या तो यंत्रा-लयमें पडे पडे कृमिभक्ष्य हो जावेगी या वणिग्विक्रयालमें उपयोगी होगी जब ऐसी दशा देखकर भी जानबूझ ग्रंथलेखन तथा प्रकाशन क्रियामें हम अपनी योजना करते हैं तो समाधानके हेतु इस श्लोकका स्मरण वारंवार हो॥

कनकभूषणसंग्रहणोचितो यदि मणिस्त्रपुणि प्रणिधीयते।
न स विरौति न चापि हि शोभते भवति योजयितुर्वचनीयता ÷॥

ग्रंथ लिखना, भाषांतर करना फिर उनके प्रकाश करनेके प्रयत्नमें लगना बहुतेरोंका स्वाभाविक व्यापार होता है, चाहे हानि हो चाहे लाभ। कभी कभी समाचरपत्रकर्त्ताभी पुस्तकोंका योग्यायोग्य विचार

÷ कांचनके आभूषणमें संग्रह करनेके योग्य रत्नको यदि कांचमें स्थान दिया, तो वह रत्न रुदन करताहै ऐसा नहीं, और वहां शोभा पाताहै ऐसाभी नहीं, किन्तु वैसी योजना करनेवाले चातुर्यकी मात्र चर्चा होती है।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

न करके मनमानी समलोचना झोंक देते हैं जिससे ग्रंथकर्त्ताका अंतः-करण कलुषित होजाताहै और ग्रन्थके प्रचारमें भी बाधा आती है ।

१३ भामिनीविलासका पद्यात्मक भाषांतर करके प्रतिश्लोकका भावार्थ पद्यमें लिखनेका मेरा विचार था, परंतु जैसी स्वास्थ्य चाहिये वैसी न होनेसे केवल गद्यमें करना पडा । श्लोकोंकी योजना कई हस्त-लिखित तथा मुद्रित पुस्तकोंको एकत्र करक ठीक की गई है भाषां-तरमें अर्थव्यंजकताके निमित्त ऊपरसे लाये गये शब्द ( ) इस चिह्नके बीचमें रखे गये हैं । ऐसा करनेकी कुछ बडी आवश्यकता न थी क्योंकि श्लोकका भाव भाषामें दरशा देना ही बस है परंतु कोई कोई यह आक्षेप करने लगते हैं कि मूलका अर्थ न करके मनमाना भाव लिख दिया है इस कारण मैंने मूलको न छोड भली भांति अर्थ स्पष्ट करनेके हेतु उपरोक्त चिह्नमें आवश्यक शब्द लिख दिये हैं । जो जो शब्द अथवा वाक्य किसीका 'अर्थ' है वह ( ) इस प्रकारके कोष्ठकमें रखा गया है । जहां जहां नूतन छंद आये हैं वहां उनके नामभी लिखे हैं; लक्षण विशेष उपयोगी न होनेसे कारण नहीं लिखा गया । भामिनीविलासांतर्गत 'औपच्छंदसिक' वृत्तको मैंने 'माल्यभारा' नामसे लिखा है । यह नाम ग्रंथांतरमें पाया भी जाता है और सरल-भी है; इसीसे उसका प्रयोग किया है । विशेषस्थलोंमें अलंकारादिक भी लिख दिये गये हैं; उनका लालन साहित्यज्ञ करेंहींगे ।

१४ प्रस्तुत पुस्तककी भूमिका लिखनेमें जो जो मुझे आवश्यक समझ पडा और जो जो जगन्नाथरायके विषयमें वार्त्ता मिली सो सो मैंने समावेशित की । ऐसा करनेमें अन्य विषयोंका भी संक्षिप्त विवे-चन होता गया है क्योंकि अंगांगीभावसे उनका भी कुछ इस लेखसे संबंध है यह उपक्रम पुस्तकके परिमाणसे विशेष दीर्घावयवी हुआ, तस्मात् अब वाचकोंसे क्षमा मांग मैं यहीं इसकी समाप्ति करता हूं ।

झांसी
१८ सप्टेंबर १८९१ } महावीर प्रसाद द्विवेदी ।

भाद्रपद शुक्ल १५ भृगौ १९४८.

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

श्रीः ।

अथ भामिनीविलासः ।

भाषाटीकासहितः ।



प्रथमः प्रास्ताविकविलासः १ ।

माधुर्यपरमसीमा सारस्वतजलधिमथनसंभूता ॥
पिबतामनल्पसुखदावसुधायांममसुधाकविता ॥ १ ॥

माधुर्यकी सीमाको प्राप्त होनेवाली, विद्यारूपी सागरके मंथनसे उत्पत्ति पानेवाली, पान करनेमें अत्यानंदकी देनेवाली, (यह) मेरी कविता संसारमें अमृत (के समान) है ॥

दिगंते श्रूयंते मदमलिनगंडाः करटिनः
करिण्यः कारुण्यास्पदमसमशीलाः खलु मृगाः ॥
इदानीं लोकेऽस्मिन्ननुपमशिखानां पुनरयं
नखानां पांडित्यं प्रकटयतु कस्मिन् मृगपतिः ॥ २ ॥

मदोदकसे जिनके गंडस्थल मलिन हो गये हैं ऐसे मदोन्मत्त हस्ती दिगंतमें हैं (इस प्रकारके शब्द लोगोंके मुखसे) सुनाई पडते

---

१ यह आर्या छन्द है । इसमें कही हुई पंडितराज जगन्नाथजीकी गर्वोक्ति अक्षरशः सत्य है यह कोई भी गुणज्ञ, जिसने इनके किये हुए ग्रंथोंका अवलोकन किया है, मानैगा । २ यह शिखरिणी छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हैं (और आसमंताद्भागमें केवल) करुणापात्र हस्तिनी तथा क्षुद्र पशु मात्र (दृष्टिगोचर होते) हैं, तो ऐसे समयमें मृगराज जो सिंह वह अपने अंत्यत तीव्र नखोंका पांडित्य कहां प्रगट करै ? (किसी राजाको बहुत कालतक युद्ध अथवा किसी पंडितको शास्त्रार्थ न करते देख यदि कोई शंका करे तो उसका निवारण इस अन्योक्तिसे करना चाहिये कि शत्रु अथवा वादानुवाद करनेवाला तो कोई रहा ही नहीं पराक्रम अथवा पांडित्य कहां प्रकट किया जाय ? हस्तियोंका दिगंतरमें वास वर्णन करके कालिदासादि कविप्रभृति तथा विक्रमादित्यादि राजप्रभृतिके यशमात्रका स्थिर रह जाना सूचित किया) ॥

पुरा सरसि मानसे विकचसारसालिस्खल-
त्परागसुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः ॥
स पल्वलजलेऽधुना मिलदनेकभेकाकुले
मरालकुलनायकः कथय रे कथं वर्तताम् ॥ ३ ॥

प्रफुल्लित कमलपंक्तियोंके गिरेहुए परागसे सुगंधित मानससरोवरके जलमें जिसकी तरुण अवस्था गई अर्थात् व्यतीत हुई ऐसा वही हंस श्रेष्ठ वृद्धावस्थामें अनेक मंडूकपरिपूर्ण एक तुच्छ जलाशयमें किस कारण आया ? (एक उत्तम पुरुषको नष्ट कार्य करते देख उसकी निंदा करनेको यह अच्छी अन्योक्ति है)॥

---

१ पृथ्वी छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

तृष्णालोलविलोचने कलयति प्राचीं चकोरागणे ।
मौनं मुंचति किंच कैरवकुले कामे धनुर्धुन्वति ॥
माने मानवतीजनस्य सपदि प्रस्थानकामेऽधुना ।
धातः किंनु विधौ विधातुमुचितो धाराधराडम्बरः॥४॥

चंद्रदर्शनकी लालसासे चंचल नेत्रवाली चकोरी जिस समय पूर्व दिशाकी ओर देख रही हैं, चंद्रविकासी कमल खिल रहे हैं; भगवान् पंचशर अपने धनुषकी प्रत्यंचाको चढा रहे हैं और मानवती स्त्रियोंके मान छुट रहे हैं उस समय ऐसे कार्य होते देख हे विधे ! चंद्रमा पर मेघाच्छादन करना क्या तुझे उचित है ? (कार्य सुफल होते समय यदि कोई विघ्न करै तो उसकी दुष्टता इस अन्योक्तिसे सूचित करना चाहिये) ॥

अयि दलदरविन्द स्यन्दमानं मरन्दं ।
तव किमपि लिहंतो मंजु गुंजंतु भृंगाः ॥
दिशिदिशि निरपेक्षस्तावकीनं विवृण्वन् ।
परिमलमयमन्यो बांधवो गंधवाहः ॥ ५ ॥

हे प्रफुल्लित कमल ! तेरे गिरे हुए परागको ग्रहण करके तेरे निकट ही भ्रमर मंजु गुंजार करते रहैं परन्तु यह तेरा दूसरा बंधु पवन अनपेक्षित होकर भी तेरी सौरभको सब ओर ले जाता है (अर्थात् भ्रमर अपेक्षित होकर केवल अपना

१ शार्दूलविक्रीडित छंद है । २ मालिनी छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

ही अर्थ सिद्ध करके तेरे निकट ही तेरी प्रशंसा करते हैं दूर नहीं जाते, परन्तु पवनको तेरी सौरभ ग्रहण करनेकी इच्छा भी नहीं तथापि वह उसको लेकर स्वयं सुगंधित हो दूसरोंको भी उससे लाभ पहुँचाता है और अनेक दिशाओंमें भ्रमण करता हुआ तेरे गुणको प्रगट करता है। (कोई ऐसे होते हैं कि अपने अर्थ लाभ उठाकर जिससे लाभ हुआ उसका वहीं कुछ वर्णन करते हैं सो उचित ही है क्योंकि अपने हितका पलटा देना योग्य है परंतु कोई सत्पुरुष निरपेक्षित होकर भी केवल दूसरोंके गुण प्रकाश करनेको उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं और ऐसा करके स्वयं प्रशंसापात्र हो दूसरोंको भी पावन करते हैं) ॥

समुपागतवति दैवादवहेलां कुटजमधुकरे माऽगाः ॥
मकरंदतुंदिलानामरविंदानामयंमहामान्यः ॥ ६ ॥

हे कुटज, [अल्प मकरंदके धारण करनेवाले वृक्ष] इस मधुकरकी, जो दैवयोगसे तेरे निकट आगया है, हेलना न कर यह रसके समूहसे चुचुहाते कमलोंको भी महा मान्य है (इस प्रकार अप्रस्तुत कुटज वृत्तांत वर्णन करके इस अन्योक्तिसे जो मनुष्य किसी राजमान्य पंडित अथवा अपर सत्पुरुषका अनादर करना चाहता है उसकी मूर्खता प्रगट करनी चाहिये ॥

---

१ आर्या छंद है।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

तावत्कोकिल विरसान् यापय दिवसान् वनान्तरे निवसन् ॥ यावन्मिलदलिमालः कोऽपि रसालः समुल्लसति ॥ ७ ॥

हे कोकिल ! वनांतरमें वास करके विरस दिनोंको (जिन दिनोंमें फूल नहीं होते अर्थात् हेमंत और शिशिर ऋतु) तबतक काट, जबतक कोई आम्रवृक्ष भ्रमरयुक्त होकर न खिलै (गुणग्राहक न होनेसे गुणी जनोंका समाधान इस अन्योक्तिसे करना चाहिये) ॥

कमलिनि मलिनीकरोषि चेतः
किमिति बकैरवहेलिताऽनभिज्ञैः ॥
परिणतमकरंदमार्मिकास्ते
जगति भवंतु चिरायुषो मिलिंदाः ॥ ८ ॥

हे कमलिनि ! यदि तेरे उत्तम मकरंदके मर्म जाननेवाले भ्रमर संसारमें जीवित हैं तो बकोंकी हेलनासे तू अपने चित्तको क्यों खेदित करती है ? (किसी पंडितकी अवज्ञा यदि मूर्खने की तो उसका समाधान इस अन्योक्ति द्वारा भली भाँति हो सकता है) ॥

नितरां नीचोऽस्मीति त्वं खेदं कूप मा कदापि कृथाः ।
अत्यंतसरसहृदयो यतः परेषां गुणंगृहीतासि॥ ९ ॥

हे कूप ! "मैं नीचा अर्थात् अधोभागस्थित हूं" ऐसा समुझ चित्तमें खेद न कर क्योंकि तु अत्यंत सरस हृदय और दूसरोंके

---

१ गुण (रस्सी) यहां द्व्यार्थिक है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

गुणका ग्रहण करनेवाला है (यदि कोई नीच कुलमें जन्म पाकर गुणग्राहक और सरस हृदय है तो उसको अपने नीचत्वपै खेद न करना चाहिये, गुणग्राहकता और दया यह मनुष्यके प्रधान गुण हैं) ॥

येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत ॥
कुटजे खलु तेनेहा तेने हा मधुकरेण कथम् ॥ १० ॥

जिस मधुकरने मधुसमूहसंयुक्त प्रफूल्लित कमलमें अपने दिन व्यतीत किये उसने कुटज वृक्षपर जानेकी हाय ! कैसे आकांक्षा की (महादानी जनों अथवा राजाओंके निकट बहुत कालतक रहकर यदि कोई पंडित अथवा कवि किसी साधारण मनुष्यकी याचना करनेको गया तो उसके भूलकी इस अन्योक्तिसे सूचना करनी चाहिये) ॥

अयि मलयज महिमाऽयं कस्य गिरामस्तु विषयस्ते ।
उद्गिरतो यद्गरलं फणिनःपुष्णासिपरिमलोद्गारैः॥ ११ ॥

हे मलयज ! [चंदन] तेरी महिमा कौन वर्णन कर सकता है जो सर्प तेरे ऊपर गरल वमन करते हैं [डालते हैं] उन्हीको तू (दंड न देकर उलटा) अपनी सुगंधसे पोषित करता है, (साधुजनोंके साथ अपकार भी करनेसे वे उपकार ही मानते हैं) ॥

पाटीर तवपटीयान्कः परिपाटीमिमामुरीकर्तुम् ॥
यत्पिषतामपि नृणां पिष्टोऽपि तनोषि परिमलैः
पुष्टिम् ॥ १२ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे पाटीर ! [चंदन] तेरी परिपाटी [पद्धति] को ग्रहण करनेमें कौन समर्थ है? जो तुझे पीसते हैं उन्हेंभी अपने चूर्ण की सौरभसे तू पुष्ट करता है ! (सज्जनोंको यदि कोई दुःखभी देवै तो वे दुःख देनेवालेको उसके अपकृत्य पर ध्यान न देकर पलटेमें सुखही देते हैं) ॥

नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥१३॥

हे हंस ! यदि नीरसे क्षीरको विलग करनेमें तूही आलस्य करेगा तो फिर इस संसारमें और दूसरा कौन अपनी कुलकानि [कुलकी परिपाटी] का पालन करेगा (यदि राजा महाराजा अथवा सज्जन पुरुष ही उत्तम कार्य करनेमें अथवा अपनी मर्यादाके पालनमें आलस करेंगे तो फिर साधारण मनुष्य रीति तथा नीति विरुद्ध करनेमें क्यों सकुचेंगे) ॥

उपरि करवालधाराकाराः क्रूरा भुजंगमपुंगवाः ॥
अन्तः साक्षाद्द्राक्षादीक्षागुरवो जयंति केऽपि जनाः १४

कोई कोई सत्पुरुष ऊपरसे तो सर्प समान क्रूर और खड्गकी धारके समान तीक्ष्ण दिखाई देते हैं परंतु अंतःकरणमें परमोत्तम द्राक्षाके तुल्य मीठा उपदेश देनेमें समर्थ होते हैं (साधारण सज्जनकी प्रशंसा है) ॥

स्वच्छन्दं दलदरविन्द ते मरन्दं
विन्दन्तो विदधतु गुंजितं मिलिंदाः ॥

१ प्रहर्षिणी छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

आमोदानथ हरिदंतराणि नेतुं
नैवान्यो जगति समीरणात्प्रवीणः ॥ १५ ॥

हे प्रफुल्लित कमल ! तेरे स्वच्छंद मकरंदको ग्रहण करके भ्रमर गुंजार करते रहैं परंतु पवनके अतिरिक्त तेरी सौरभको सर्व दिशाओंमें ले जानेको दूसरा और कोई समर्थ नहीं । (राजाओंके यहां अनेक पंडित और गुणीजनोंका पालन तो होताही है परंतु विना कवियोंके राजाके गुण तथा पराक्रमका वर्णन दूर देशोंमें नहीं हो सकता) ॥

याते मय्यचिरान्निदाघमिहिरज्वालाशनैः शुष्कतां
गन्ता कं प्रति पांथसंततिरसौ संतापमालाकुला ॥
एवं यस्य निरंतराधिपटलैर्नित्यं वपुः क्षीयते ।
धन्यं जीवनमस्य मार्गसरसो धिग्वारिधीनां जनुः १६ ॥

ग्रीष्मकालके सूर्यकी परमप्रचंड ज्वालासे मेरे शीघ्रही शुष्क हो जाने पर ये पिपासाकुल पथिक किसके निकट जावेंगे ? ऐसा कहनेवाला मार्गका तडाग, जिसका शरीर निरंतर आपत्तियोंसे क्षीण होता है, धन्य है. परंतु अखंड जल परिपूर्ण सागरको धिक्कार है (क्योंकि वह उपकार करनेमें समर्थ नहीं) (तात्पर्य– धनाढ्य होकर भी दान न दिया तो धिक्कार है और अल्प वैभवमें जिसने परोपकार किया तो फिर क्या कहना, उसीका जीवन सुफल है) ॥

---

१ शार्दूलविक्रीडित है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

आपेदिरेऽम्बरपथं परितः पतंगा
भृंगा रसालमुकुलानि समाश्रयन्ते ॥
संकोचमंचितसरस्त्वयि दीनदीने
मीनो नु हन्त कतमां गतिमभ्युपेतु ॥ १७ ॥

हे सरोवर ! तेरे शुष्क हो जानेपर (तेरे जलवासी पक्षी तो आकाशको उडजावैंगे, और (तेरे जलोत्पन्न कमलोंपै गुंजार करनेवाले) भृंग आम्र कलिकाओंका आश्रय लेवेंगे, परन्तु इस महादीन मीनकी हाय ! क्या गति होवैगी ? (दाताको निर्धनता प्राप्त होनेसे वे याचक जिनको दूसरे ठौर आश्रय मिल सकता है अन्यस्थलमें जाकर निर्वाह करैंगे परंतु जो निराश्रित हैं उनकी क्या दशा होगी ? उनको तो और कहीं विश्राम लेनेका ठौर ही नहीं ?)

मधुप इव मारुतेऽस्मिन् मा सौरभलोभमम्बुजनि मंस्थाः ॥ लोकानामेव मुदे महितोऽप्यात्माऽमुनार्थितां नीतः ॥ १८ ॥

हे कमल ! जिस प्रकार तू अपनी सौरभका लोभ भ्रमरोंसे करता है (अर्थात् भ्रमरोंके त्राससे रात्रिमें मुकुलित होकर उन्हें अपनी सौरभ अथवा पराग नहीं लेने देता) वैसा पवनसे न कर; इसने लोकोपकारार्थ अपनी श्रेष्ठ आत्मातकभी याचकोंको दे दिया है (अर्थात् जीवमात्रको सुगंधित करता है)

---

१ वसंततिलका छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

तात्पर्य—अपर याचकोंको दान देनेसे दाता चाहै अपना मुख मोरे परंतु कविजनोंके साथ वैसा व्यवहार उचित नहीं क्योंकि वे दातृत्वका वर्णन देश देशांतरोंमें करते हैं ॥

गुंजति मंजु मिलिंदे मा मालति मानमौनमुपयासीः ।
शिरसा वदान्यगुरवः सादरमेनं वहन्तिसुरतरवः॥ १९॥

हे मालति ! भ्रमरोंके मंजु गुंजार करने पर तू मान तथा मौन धारण न कर (अर्थात् उनको अपना रस लेनेदे) क्योंकि ये महादानी कल्पवृक्षकोभी शिरसा वंद्य हैं (अल्प धनवानोंके पास यदि दैवयोगसे कोई गुणीजन आजा तो उनको दान देनेमें सकुच न करनी चाहिये क्योंकि बडे बडे राजा महाराजाभी उनका सत्कार करते हैं) ॥

येस्त्वं गुणगणवानपि सतां द्विजिह्वैरसेव्यतां नीतः ॥
तानपि वहसि पटीरज किं कथयामस्त्वदीयमौ-
न्नत्यम् ॥ २० ॥

हे चंदनवृक्ष ! जिन सर्पोंने तुझ गुणवान्को सज्जनोंकी सेवाके योग्य न रक्खा (अर्थात् तुझे सर्पसहित देख सत्पुरुषोंको तेरे निकट आनेमें भय उत्पन्न किया) उन्हींको तू धारण किये हुए है इससे तेरी योग्यताका वर्णन कैसे कर सकता हूं? (दुष्टोंकोभी एक वार ग्रहण करके त्याग नहीं करता इससे प्रशंसनीय है अथवा व्याज स्तुतिभी सूचित होती है कि तू अविवेकी है क्योंकि सदैव अपने निकट सर्पोंको स्थान देता है जिससे साधु-

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

जन भयके मारे तेरे पार्श्ववर्ती नहीं होते किसी मनुष्यकी कुसंगति वर्णन करनेमें दोनों प्रकारके अर्थोंका प्रयोग हो सकता है) ॥

गाहितमखिलं गहनं परितो दृष्टाश्च विटपिनः सर्वे ।
सहकार न प्रपेदे मधुपेन भवत्समं जगति ॥ २१ ॥

हे आम्रवृक्ष ! मधुपने सारा वन ढूंढा और आस पासके सर्व वृक्ष देखे परंतु तेरे समान उसे दूसरा न मिला (किसीकी भी प्रशंसा करनेमें इस अन्योक्तिका उपयोग हो सकता है) ॥

अवनीतपरिमलांतरकथे पदं न्यस्य देवतरुकुसुमे ॥
पुष्पान्तरेऽपि गतुं वाञ्छसि चेद्भ्रमरधन्योऽसि ॥२२॥

हे भ्रमर ! अद्वितीय सुगंधमय मंदार पुष्प निवास करके अपर पुष्पमें तुझ जानेवालेको धन्य है (सत्संगका त्याग करके कुसंग करनेवालोंकी इस अन्योक्तिसे कविनेव्याजस्तुति की है)

तटिनि चिरायविचारय विन्ध्यभुवस्तवपवित्रायाः ॥
शुष्यंत्या अपि युक्तं किं खलु रथ्योदकादानम् २३॥

हे सरिते ! तू स्वयं विचार कर कि विंध्याचलके (जिस भागसे होकर तू निकली है उस भागकी) तेरी पवित्र भूमि तेरे शुष्क हो जाने पर भी क्या मार्गस्थ अल्प तडागोंसे जल लेनेकी इच्छा करेगी (अर्थात् न करेगी सत्संगतिका वियोग हो जानेसे भी सज्जन दुष्ट संगति कदापि अंगीकार नहीं करते) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

पत्रफलपुष्पलक्ष्म्या कदाप्यदृष्टं वृतं च खलु शूकैः ॥
उपसर्पेम भवंतं बर्बर वद कस्य लोभेन ॥ २४ ॥

हे बर्बरवृक्ष ! पत्र, फल और फूलसे सुशोभित तो तुझे कभी देखा ही नहीं वरन तू उलटा कांटोंसे युक्त है फिर भला तू ही कह कि हम किस लोभसे तेरे निकट प्राप्त होवें (यदि कोई दुष्टजन कहे कि हमारे पास सज्जन क्यों नहीं आते तो उसका उत्तर इस अन्योक्तिमें है दुष्टोंसे उपकार तो होनेहीका नहीं उलटे उनसे कुवाच्य सुनने पडते हैं) ॥

एकस्त्वं गहनेऽस्मिन् कोकिल न कलं कदाचिदपि कुर्याः। साजात्यशंकयाऽमी न त्वां विघ्नंतु निर्दया काकाः ॥ २५ ॥

हे कोकिल ! तू अकेला इस वनमें कदापि शब्द न कर जिससे तुझे अपना सजातीय समझे ये निर्दई काक तुझे न मारें अर्थात् जो तू बोलेगी तो काक यह समझेंगे कि हमारे सजातियोंने यह बोली कहां सीखी, इससे वे तेरी अवश्य ताडना करेंगे अथवा, तू उनसे अपने बालकोंका प्रतिपालन कराती है इससे वे मनमें मत्सर मान तेरा अनहित चाहेंगे (दुर्जनोंकी सभामें सज्जनको मौनही धारण करना उचित है) ॥

तरुकुलसुखमापहरां जनयंतीं जगतिजीवजातार्तिम् ।
केनगुणेनभवानीतातहिमानीमिमां वहसि ॥ २६ ॥

---

१ 'विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपंडितानाम्' ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे हिमालय ! वृक्षोंकी शोभाको नाश करनेवाले और सांसारिक प्राणियोंको क्लेश देनेवाले इस हिमसमूहको तू क्यों धारण करता है ? (सत्पुरुषने यदि कोई कुत्सित कार्य किया तो उसको इस अन्योक्तिसे शिक्षा करनी चाहिये इससे प्रशंसा और निंदा दोनों प्रकट होती हैं । दोष जान त्याग नहीं करता यह सुझाना तो निंदा हुई और दोषयुक्त शरण आये हुए मनुष्यको अंगीकार करके प्रतिपालन करता है यह कहना प्रशंसा हुई) ॥

कलभ तवांतिकमागतमलिमेनं माकदाप्यवज्ञासीः ।
अपि दानसुंदराणांद्विपधुर्याणामयंशिरोधार्यः ॥२७॥

हे गजशावक ! तेरे निकट आये हुए इस भ्रमरकी कदापि अवज्ञा न कर, इसे श्रेष्ठ मत्त गजभी अपने शिरपर धारण करते हैं (अल्प दानीके पास यदि दैववशात् कोई गुणी गया तो उसकी इच्छा सुफल करनी चाहिये क्योंकि उसका मान महान् दानशूरभी करते हैं) ॥

अमरतरुकुसुमसौरभसेवनसंपूर्णसकलकामस्य ।
पुष्पांतरसेवेयं भ्रमरस्य विडम्बना महती ॥ २८ ॥

कल्पद्रुमके पुष्पकी सौरभके सेवनसे जिस भ्रमरके सर्व कार्य फलीभूत हुए हैं उसकी, दूसरे पुष्पोंकी सेवा करनेसे महा विडम्बना है (चक्रवर्ती राजाओं अथवा सत्पुरुषोंका द्वार त्याग यदि कोई गुणी अपर द्वारका अवलंबन करै अथवा किसी नीच पुरुषसे मित्रता संपादन करै तो उसकी विडम्बना अवश्यही होगी) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

पृष्टाः खलु परपुष्टाः परितोदृष्टाश्चविटपिनः सर्वे ॥
माकंद न प्रपेदे मधुपेन तवोपमा जगति ॥ २९ ॥

हे आम्रवृक्ष ! मधुपने कोकिलसे पूंछा और आसमंताद्भाग-के सर्व वृक्षोंको भी देखा परन्तु तेरी उपमा देने योग्य उसे एक भी न मिला (उस दाता, राजा अथवा गुणीकी प्रशंसा है जिसकी समता दूसरा नहीं कर सकता) ॥

तोयैरल्पैरपि करुणया भीमभानौ निदाघे ।
मालाकार व्यरचि भवता या तरोरस्य पुष्टिः॥
वर्षाकाले जनयितुमिह प्रावृषेण्येन वारां ।
धारासारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन ॥ ३० ॥

हे मालाकार ! (माली) ग्रीष्म ऋतुमें प्रचंड सूर्यसे संतप्त किये गये इस वृक्षको अल्पोदक सिंचनसे जैसा तूने पुष्ट किया है वैसी पुष्टि वर्षाकालमें सर्व ओर वारिधारा वरसानेवाले मेघसे क्या हो सकेगी ? अर्थात् न हो सकेगी (आपत्तिमें किंचत् मात्र सहायता करनेसे जो सुख होता है सो सुदिनमें अतुल संपत्ति दानसेभी होना संभव नहीं) ॥

आरामाधिपतिर्विवेकविकलो नूनं रसा नीरसा
वात्याभिः परुषीकृता दश दिशश्चंडातपो दुःसहः ॥
एवं धन्वति चंपकस्य सकले संहारहेतावपि
त्वं सिंचन्नमृतेनतोयद कुतोऽप्याविष्कृतोवेधसा॥३१॥

---

१ मंदाक्रांता छंद ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

मालाकार (माली) विवेक शून्य हो गया है; रस नीरस हो गये हैं, दशो दिशा प्रचंड पवनसे अगम्य हो गई हैं सूर्यातप असह्य हो गई है, इस प्रकार मरुदेशोत्पन्न चंपक वृक्षके संहार करनेकी जिस समयमें सर्व सामग्री हुई उस समयमें हे मेघ ! उसे जलसे सिंचन करके प्राणरक्षा करनेके लिये तुझे ब्रह्माने कहांसे उत्पन्न किया ? (कार्य बिगडते बिगडते यदि कोई अनायास सहायता देकर उसे ठीक करदेवै तो उस पुरुषको इस अन्योक्तिसे धन्यवाद दे सकैंगे) ॥

न यत्र स्थेमानं दधुरतिभयभ्रांतनयनाः
गलद्दानोद्रेकभ्रमदलिकदंबाः करटिनः ॥
लुठन्मुक्ताभारे भवति परलोकं गतवतो
हरेरद्यद्वारे शिवशिवशिवानां कलकलः ॥ ३२ ॥

जिस द्वारपर मदोदक पानकी इच्छासे आये हुए भ्रमर-समूहको धारण करनेवाले और भयसे चकित नेत्रोंवाले करिवर एक क्षण भी न ठहरते थे और जहां गजमुक्ता बिखरे रहते थे ऐसे उसी द्वारपै शिव, शिव, आज सिंहके परलोकवासी होनेसे शृगाली शब्द करती हैं ! (वीरों दाताओं तथा सत्पुरुषोंके पश्चात् कभी कभी ऐसीही विपरीत दशा होती है) ॥

दधानः प्रेमाणं तरुषु समभावेन विपुलम् ।
न मालाकारोऽसावकृत करुणां बालबकुले ॥

---

१ शिखरिणी ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अयं तु द्रागुद्यत् कुसुमनिकराणां परिमलैः ।
दिगन्तानातेने मधुपकुलझंकारभरितान् ॥ ३३ ॥

वाटिकाके सब वृक्षोंपर समभावसे प्रीति रख जिस बाल-बकुलके ऊपर मालाकार [माली] ने करुणा न की अर्थात् न सींचा उसी (बालबकुल) ने मधुप समूह जिनपै गुंजार कर रहा है ऐसे अपने पुष्पोंकी सुगंधसे दिशाओंको शीघ्रही परिपूर्ण किया (गुरुने यदि किसी अल्पवयस्क शिष्यपर विशेष ध्यान न भी दिया तोभी यदि वह चतुर और बुद्धिमान् है तो शीघ्र ही विद्या-ओंमें प्रवीण होकर अपने अपने तथा गुरुके गुणोंका प्रकाश सब ओर करता है) ॥

मूलं स्थूलमतीवबन्धनदृढं शाखाः शतंमांसलाः
वासो दुर्गमहीधरे तरुपते कुत्रास्ति भीतिस्तव ॥
एकः किंतु मनागयं जनयाति स्वान्ते ममाधिज्वर-
ज्वालालीवलयीभवन्नकरुणोदावानलो घस्मरः ॥३४॥

हे तरुपते ! मूल तो तुम्हारी परम स्थूल है; आलवाल [थाला] दृढ बँधा है, शाखायें पुष्ट हैं, निवास तुम्हारा दुर्ग पर्वत पर है, तस्मात् तुम्हें किसका भय है? परंतु एक यह ज्वाल जालसे चक्राकार हुवा दयारहित, सर्व भक्षक, अग्नि मेरे अंतः-करणको कुछ संतप्त करता है (किसी धर्मात्मा पुरुषको देख, दुष्टोंके द्वारा उसके अपकार होनेकी शंका मनमें रख कोई सत्पु-रुष तरुप्रत्यन्योक्तिसे अपना विषाद दुष्टजनोंकी दुष्टता और धार्मिक मनुष्योंकी अवस्था वर्णन करता है) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

ग्रीष्मेभीष्मतरैःकरैर्दिनकृतादग्धोऽपि यश्चातक-
स्त्वांध्यायन्घनवासरान्कथमपिद्राघीयसोनीतवान्
दैवाल्लोचनगोचरेण भवता तस्मिन्निदानीं यदि स्वी-
चक्रे करकानिपातनकृपा तत् कं प्रतिब्रूमहे ॥ ३५ ॥

हे मेघ ! जिस चातकने ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी प्रचंड किरणों-से दग्ध हो तेरा ध्यान धर जैसे तैसे बडे बडे दिन काटे, दैवयो-गसे उसके सन्मुख प्राप्त होकर यदि तूही उपल प्रहार करने लगा तो फिर किससे क्या कहै ? (जब पालन कर्ताही प्राणहर्ता हुआ तब महाही अन्याय समझना चाहिये) ॥

दवदहनजटालज्वालजालाहतानाम्
परिगलितलतानां म्लायतां भूरुहाणाम् ॥
अपिजलधर शैलश्रेणिशृंगेषु तोयम्
वितरसि बहु कोऽयं श्रीमदस्तावकीनः ॥ ३६ ॥

हे जलधर ! दावानलसमूहसे दग्ध, लतागलित, मलीनवृक्षों-का (अनादर करके) तू शैलशृंगोंपर जल वरसाता है, यह तेरा कैसा श्रीमद है ? (जिसे आवश्यकता है उसको विस्मरण करके जिसको किसी प्रकारकी अपेक्षा नहीं उसे दान देनेवाले घनमदमत्त राजा अथवा धनिकका वृत्तांत है) ॥

शृण्वन् पुरः परुषगार्जितमस्य हंत
रे पांथ विस्मितमना न मनागपि स्याः ॥
विश्वार्तिवारणसमर्पितजीविनतोऽयम्
नाकर्णितः किमु सखे भवताऽम्बुवाहः ॥ ३७ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे पथिक ! इस कठोर गर्जनाको सन्मुख श्रवण कर तू अपने मनमें किंचित्‌भी विस्मित न हो ! सखे ! संसारःदुःख शमनार्थ निज जीवनको अर्पण करनेवाले इस अंबुवाह [जलधर] का नाम क्या तूने कभी नहीं सुना है ? (परम परोपकारी परंतु कटुवादी सत्पुरुषका वृत्तांत है) ॥

सौरभ्यं भुवनत्रयेऽपि विदितं शैत्यं तु लोकोत्तरम् ।
कीर्तिः किंच दिगंगनागणगता किंत्वेतदेकं शृणु ॥
सर्वानेव गुणानियं निगिरति श्रीखण्ड ते सुन्दरान् ।
उज्झंती खलु कोटरेषु गरलज्वालां द्विजिह्वावली ॥ ३८ ॥

हे चंदन ! तेरी सुगन्ध त्रैलोक्यमें विदित है, तेरी शीतलता सबसे श्रेष्ठ है, तेरी कीर्ति दशों दिशाओंमें व्याप्त है, परंतु इतनी एक बात सुन कि तेरे खोखलवासी, विष उगलनेवाले, सर्प इन तेरे सर्व सुन्दर गुणोंको नाश करते हैं (सत्पुरुषके सद्गुण दुष्ट समागमसे लोप हो जाते हैं) ॥

नापेक्षा न च दाक्षिण्यं न प्रीतिर्न च संगतिः ॥
तथापि हरते तापं लोकानामुन्नतो घनः ॥ ३९ ॥

ऊंचें मेघको न तो किसी बातकी अपेक्षा है, न चतुरता है, न प्रीति है, न संगति तथापि (इतना होनेपै भी) वह मनुष्योंकी ताप हरण करता है । (साधु अकारण ही परोपकारी होते हैं) ॥

---

१ अनुष्टुप् ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

समुत्पत्तिः स्वच्छे सरसि हरिहस्ते निवसति-
र्विलासः पद्मायाः सुरहृदयहारी परिमलः ॥
गुणैरेतैरन्यैरपि च ललितस्याम्बुज तव
द्विजोत्तंसे हंसे यदि रतिरतीवोन्नतिरियम् ॥ ४० ॥

हे अम्बुज! स्वच्छ सरोवरसे तेरी उत्पत्ति है, विष्णुके हाथमें तेरा निवास है, लक्ष्मीका तू विलासस्थान है, सुगंध तेरी देवताओंके भी मनको हरण करनेवाली है, परंतु जो तू पक्षिश्रेष्ठ हंससे प्रीति करता तो ये और तेरे अपर गुण तुझको परमोन्नत पदवीको पँहुचाते । अर्थात् गुण तेरे अभी भी श्रेयस्कर हैं परन्तु जो तू हंसको अपना मित्र बनाता तो अत्यन्त ही प्रतिष्ठापात्र होता । (यदि दाता राजा अथवा किसी सज्जनमें कुछ दोष सूचित करता है तो यह अन्योक्ति सामयिक होगी) ॥

साकं ग्रावगणैर्लुठंति मणयस्तीरेऽर्कबिम्बोपमा ।
नीरे नीरचरैः समं स भगवान् निद्राति नारायणः ॥
एवं वीक्ष्य तवाविवेकमपि च प्रौढिं परामुन्नतेः
किं निन्दान्यथवा स्तवानि कथय क्षीरार्णवत्वामहम् ॥

हे क्षीरसागर ! तेरे तीरपर सूर्यबिम्ब सदृश दीप्तिमान् मणिय पाषाणोंके साथ पडी रहती हैं और तेरे जलमें जलजंतुओंके बीच भगवान् नारायण शयन करते हैं इस प्रकारका तेरा अविवेक तथा वैभव देख मैं तेरी निंदा करूं अथवा प्रशंसा करूं यह तूही कह? (जहाँ सत्कर्मके साथ असत्कर्मभी होते हैं वहां इस अन्योक्तिका भाव घटित करना चाहिये) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

किं खलु रत्नैरेतैः किं पुनरभ्रायितेन वपुषा ते ।
सलिलमपि यन्न तावकमर्णव वदनं प्रयाति तृषितानाम् ॥ ४२ ॥

हे सागर ! तेरे अमूल्य रत्नों तथा तेरे मेघवत् (सुंदर) शरीरसे क्या लाभ है जो तेरा जलभी पिपासाकुल प्राणियोंके मुखमें नहीं पडता ! (यदि श्रीमान्ने दान न दिया तो उसका धन व्यर्थ है) ॥

इयत्यां सम्पत्तावपि च सलिलानां त्वमधुना
न तृष्णामार्त्तानां हरसि यदि कासार सहसा ॥
निदाघे चंडांशौ किरति परितोऽगारानिकरम्
कृशीभूतः केषामहह परिहर्तासि खलु ताम् ॥ ४३ ॥

हे कासार ! (सरोवर) अपनी सलिलरूपी संपत्तिसे तू इस समयमें पिपासाकुलितोंकी तृष्णा नहीं हरण करता है तो फिर ग्रीष्म ऋतुमें प्रचंड सूर्यके सर्व ओर बरसाये हुए अंगारोंसे शुष्क हो जानेपर किसकी पिपासा शांत करैगा ? (धनवान् होकर यदि दान न दिया तो निर्धनत्वको प्राप्त होनेसे याचकोंकी इच्छा कैसे पूरण हो सकैगी ?) ॥

अयि रोषमुरीकरोषि नो चेत् किमपि त्वां प्रति वारिधे वदामः ॥ जलदेन तवार्थिना विमुक्तान्यपि तोयानि महान् न हा जहासि ॥ ४४ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे वारिधे ! (समुद्र) यदि तू रोष न करे तो मैं तुझसे कुछ कहूं । (कहना यही है कि) तू महान् होकर भी अपने याचक मेघके त्यागे हुए जलको नहीं छोडता ? (जिस वस्तुको एकवार किसीको देडाला उसे फिर फेर लेना सत्पुरुषोंको न चाहिये) ॥

न वारयामो भवतीं विशंतीम्
वर्षानदिस्रोतसि जह्नुजायाः ॥
न युक्तमेतत्तु पुरो यदस्या-
स्तरंगभंगान्प्रकटीकरोषि ॥ ४५ ॥

हे वर्षाऋतुकी नदि ! गंगाके प्रवाहमें जानेको मैं तुझे निषेध नहीं करता परंतु उसकी तरंगोंको तुझे भंग न करना चाहिये (बडे बडे विद्वज्जनोंकी सभामें अल्पज्ञानी पंडितोंका जाना अनुचित नहीं परंतु वहां अपनी चातुर्यता बतला कर उनकी विद्वत्ताको लोप करनेका प्रयत्न कदापि न करना चाहिये (इस अन्योक्तिका कई प्रसंगोंमें उपयोग हो सकता है) ॥

पौलोमीपतिकानने विलसतां गीर्वाणभूमीरुहां
येनाघ्रातसमुज्झितानि कुसुमान्याजघ्रिरे निर्जरैः ॥
तस्मिन्नद्य मधुव्रते विधिवशान्माध्वीकमाकांक्षति
त्वं चेदंचसि लोभमम्बुज तदा किं त्वां प्रतिब्रूमहे ४६ ॥

हे अंबुज ! जिस मधुकरने इन्द्रके नंदनवनमें लगे हुए देवद्रुमोंके पुष्पोंकी सुगंध, देवताओंकी नासिकातक पहुंचनेके पहिलेही लेलेकर छोड दिया, दैववशात् अब तुझसे मकरंद पानेकी

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

इच्छा करनेवाले उसी मधुकरसे यदि तू अपने मकरंदका लोभ करता है तो मैं तुझसे क्या कहूं । (यदि किसी महान् पंडितने दैवयोगसे राजद्वार छोड किसी सामान्य पुरुषके पास आय कुछ याचना की और उसकी ओर ध्यान न दिया तो याचकका क्या गया, जिससे याचना की उसीकी मान हानि हुई ऐसा समझना चाहिये) ॥

प्रारम्भे कुसुमाकरस्य परितो यस्योल्लसन्मंजरी
पुञ्जे मञ्जुलगुञ्जितानि रचयंस्तानातनोरुत्सवान् ॥
तस्मिन्नद्य रसालशाखिनि दशां दैवात् कृशामंचति
त्वंचेन्मुंचसि चंचरीकविनयंनीचस्त्वदन्योऽस्तिकः ४७

हे चंचरीक ! वसंतके आतेही जिसके चारों ओर कुसुमित मंजरीके पुंजमें मंजु गुंजार करते हुए तूने बडा सुख पाया अब दैववशात् उसी आम्रवृक्षको कृशता (पुष्पविहीनत्व) प्राप्त होनेसे यदि तू उससे स्नेह न रक्खेगा तो तुझसे विशेष नीच और कौन है ? (जबतक स्वामी संपत्तिमान् है तबतक उसके यहां अनेक भोगकर अभाग्यवश उसे निर्धनत्व प्राप्त होनेसे केवल नीचही उसका त्याग करते हैं, भले मनुष्य यदि सुखमें साथी हुए तो दुःखमें भी अवश्य होते हैं) ॥

मुक्ता मृणालपटली भवता निपीता-
न्यम्बूनि यत्र नलिनानि निषेवितानि ॥

---

१ वसंततिलका ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

रे राजहंस वद तस्य सरोवरस्य
कृत्येन केन भविताऽसि कृतोपकारः ॥ ४८ ॥

अरे राजहंस ! जिस सरोवरमें निवास करके तूने मृणाल तंतुओंका भोजन किया, जल पिया और चन्द्रविकाशी कमलोंकाभी सेवन किया उस सरोवरका किस कृत्यसे तू प्रत्युपकार करैगा ? संसारमें बहुतसे मनुष्य दूसरेकी द्रव्यसे अनेक सुख भोग करते हैं परंतु अपनी एक फूटी कौडीतक व्यय नहीं करते, किं बहुना प्रत्युपकार क्या है जानतेही नहीं । उपरोक्त अन्योक्तिसे इस प्रकारके मनुष्योंका वृत्तांत प्रतीत होता है ॥

एणीगणेषु गुरुगर्वनिमीलिताक्षः
किं कृष्णसार खलु खेलसि काननेऽस्मिन् ॥
सीमामिमां कलयभिन्नकरीन्द्रकुंभ-
मुक्तामयीं हरिविहारवसुन्धरायाः ॥ ४९ ॥

हे कृष्णसार हरिण ! गर्वसे अंध होकर हरिणियोंके बीच इस वनमें तू क्यों खेलता है ? अरे सिंहविहारभूमिकी इस सीमाको, जो गजेन्द्रोंके विदीर्ण गंडस्थलसे गिरे हुए मुक्ताओंसे सुशोभित है (शब्दार्थ समझ) क्या तू नहीं जानता ? (महान् चक्रवर्ती नरेशकी राज्यमें अविवेकसे आये हुए एक लघुतम राजाका वर्णन है) ॥

जठरज्वलनज्वलताप्यपगतशंकं समागतापि पुरः ॥
करिणामरिणा हरिणाली हन्यतां नु कथम् ॥ ५० ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

निःशंक सन्मुख [शरण] आये हुए हीरणके झुण्डको करि-वरशत्रु सिंह क्षुधार्त होनेपर भी कैसे मारे ! (कपट त्याग निः-शंक होकर यदि वैरी शरण आया तो नीतिज्ञ उसे नहीं मारते । इसमें शब्दालंकारांतर्गत ' यमक ' अलंकार है) ॥

येनं भिन्नकारिकुंभविस्खलन्
मौक्तिकावलिभिरंचिता मही ॥
अद्य तेन हरिणान्तिके कथं
कथ्यतां नु हरिणा पराक्रमः ॥ ८१ ॥

जिस सिंहने करिकुम्भको विदारण करके उससे गिरे हुए गजमुक्ताओंसे पृथ्वीको परिपूरित किया वह अब हरिणोंके मारनेमें अपने पराक्रमको भला किस प्रकार वर्णन करेगा ?(बडे बडे बली शत्रुओंके शिरश्छेदन करनेवाले वीर पुरुष सामान्य वैरीके ऊपर हाथ नहीं उठाते) ॥

स्थितिं नो रे दध्याः क्षणमपि मदान्धेक्षण सखे
गजश्रेणीनाथ त्वमिह जटिलायां वनभुवि ॥
असौ कुंभिभ्रान्त्या खरनखरविद्रावितमहा
गुरुग्रावग्रामः स्वपिति गिरिगर्भे हरिपतिः ॥ ८२ ॥

अरे मदांध, मित्र, गजश्रेणी नाथ [गजेंद्र] ! तू इस गहन वनभूमिमें क्षणमात्र भी न ठहर; (क्योंकि) हस्तीकी शंका करके बडे बडे पत्थरोंके ढेरकोभी अपने तीक्ष्ण नखोंसे विदारण करके

---

१ रथोद्धता छन्द है । २ हस्तीका मस्तक ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

इस गिरिकी गुहामें सिंहराज शयन करता है (महा प्रबल महीप जिसे शत्रुका उत्कर्ष किंचित्भी सहन नहीं होता. उसके राज्यमें अपने बलके गर्वसे आये हुए अल्पवैभववाले राजाका वृत्तांत है) ॥

गिरिगह्वरेषु गुरुगर्वगुम्फितो
गजराजपोत न कदापि सञ्चरेः ।
यदि बुध्यते हरिशिशुः स्तनन्धयो
भविता करेणुपरिशेषिता मही ॥ ५३ ॥

हे गजशावक ! गर्वकरके तू इस गिरिगुहामें कदापि संचार न कर (क्योंकि) यदि दुग्धपान करनेवाला सिंहपुत्र जानैगा तो (तुझे मार) पृथ्वीको गजिनीशेष करैगा। अर्थात् पृथ्वीमें गजिनीही रह जायगी तू नहीं (बडे शौर्यवान् शत्रुपुत्रके देशमें प्रवेशकी इच्छा करनेवाले राजाके बालकको उपदेश है) ॥

निसर्गादारामे तरुकुलसमारोपसुकृती
कृती मालाकारो बकुलमपि कुत्रापि निदधे ॥
इदं को जानीते यदयमिह कोणान्तरगतो
जगज्जालं कर्ता कुसुमभरसौरभ्यभरितम् ॥ ५४ ॥

वृक्षोंके लगानेमें परम कुशल, पुण्यवान्, मालीने सहज स्वभावसे वाटिकामें कहीं (विना विचारे) बकुलको स्थापन किया। परंतु यह किसको विदित था कि यह एक कोनेमें लगा

१ मंजुभाषिणी छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हुआ बकुलका पेड अपने पुष्पोंकी सौरभसे संसारको परिपूरित करैगा (विद्वानोंका सभामें यदि आदरभी न हुआ और योग्य आसनभी न मिला तोभी समय पाकर वह अपने गुणोंका प्रकाश करते ही हैं) ॥

यस्मिन् वेल्लति सर्वतः परिचलत्कल्लोलकोलाहलै-
र्मन्थाद्रिभ्रमणभ्रमं हृदि हरिद्दन्तावलाः पेदिरे ॥
सोऽयं तुंगतिमिंगिलांगकवलीकारक्रियाकोविदः
क्रोडे क्रीडतु कस्य केलिकलहत्यक्तार्णवो राघवः ॥५५॥

सागरके जलमें जिसके क्रीडा करनेसे चारों ओर उठी हुई चंचल तरंगोंके कोलाहलको श्रवण करके दिग्गजोंके मनमें मंद-राचल (पर्वत) से समुद्रमंथनका भ्रम हुआ वही बडे बडे मत्स्योंको भक्षण करनेकी क्रियामें कुशल राघवनामी मत्स्यराज कलहके कारण समुद्रको छोड और कहां केलि करैगा ? (यदि एक महान् महीपाल अल्प कलह होनेसे अपनी राजधानीको त्यागना चाहे तो उचित नहीं इस अन्योक्तिको कई दृष्टान्तोंमें घटित कर सकते हैं) ॥

लूनं मत्तमतंगजैः कियदपि च्छिन्नं तुषारार्दितैः
शिष्टं ग्रीष्मजभानुतीक्ष्णकिरणैर्भस्मीकृतं काननम् ॥
एषा कोणगता मुहुः परिमलैरामोदयन्ती दिशो
हा कष्टं ललिता लवंगलतिकादावाग्निना दह्यते ॥५६॥

कुछ वनको मत्त गजोंने तोड डाला कुछ तुषारसे नष्ट हो गया, शेष ग्रीष्मऋतुके सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंने भस्म कर दिया,

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dey Prayag. Digitized by eGangotri

रही यह सुन्दर लवंगलता जो एक कोनेमें लगी हुई अपनी सुगंधसे सर्व दिशाओंको सुगंधित करती थी उसे दावाग्नि दहन करती है, हाय हाय यह बडे कष्टकी बात है ! (विजय किये हुए देशको छिन्न भिन्न करनेके अनंतर भूलसे शेष रही वही नगरी जिसमें सज्जनोंका वास था और जहां धर्म होता था उसके भी नष्ट करनेपै कटि बांधनेवाले दुराचारी राजाका वृत्तांत है) ॥

स्वर्लोकस्य शिखामणिः सुरतरुग्रामस्य धामाद्भुतम्
पौलोमीपुरुहूतयोः परिणतिः पुण्यावलीनामसि ॥
सत्यं नन्दन किन्त्विदंसहृदयैर्नित्यं विधिः प्रार्थ्यते
त्वत्तः खांडवरंगतांडवनटो दूरेऽस्तु वैश्वानरः॥ ९७॥

हे नन्दनवन ! तू सुरलोकका शिखामणि है, देवद्रुमोंके उत्पन्न होनेका एक अद्भुत स्थान है; इन्द्र और इन्द्राणीकी परमोत्तम पुण्यका परिणाम [फल] है; यह सब सत्य है परंतु हम ईश्वरसे नित्य यही प्रार्थना करते हैं कि खांडववनरूपी रंगभूमिमें नृत्य करनेवाला नटरूपी अग्नि तुझसे सदैव दूर रहै (कोई सत्पुरुष किसी धार्मिक श्रेष्ठका वर्णन करके यह प्रार्थना करता है कि दुष्टजन तुझे क्लेशकारी न होवैं) ॥

स्वस्वव्यापृतिमग्नमानसतया मत्तो निवृत्ते जने
चंचूकोटिविपाटितारपुटो यास्याम्यहं पञ्जरात् ॥
एवं कीरवरे मनोरथमयं पीयूषमास्वादयत्यन्तः
सम्प्रविवेशवारणकराकारः फणिग्राममणीः ॥ ९८ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

जब मनुष्य अपने अपने कार्यमें मग्न होकर मुझसे दूर चले जावेंगे तब मैं अपनी चोंचसे खिडकीको तोड पिंजरेसे निकल जाऊंगा, इस प्रकारके मनोरथरूपी पीयूषका स्वाद कीर [सुवा] ले ही रहाथा कि गजशुण्डाके समान एक विशाल सर्पने पिंजरेमें प्रवेश किया (मनुष्य सुखार्थ प्रयत्न करनेको उद्यत होते परंतु अभाग्यवश कार्यारंभके पहिलेही प्रतिकूल बातें होने लगती हैं)॥

रे चाञ्चल्यजुषोमृगाः श्रितनगाः कल्लोलमालाकुला
मेतामम्बुधिगामिनीं व्यवसिताः संगाहितुं वा कथम्
अत्रैवोच्छलदम्बुनिर्भरमहावर्तैः समावर्तितो
यद्ग्राहेण रसातलं पुनरसौ नीतो गजग्रामणीः ॥५९॥

हे पर्वताश्रित चञ्चल मृग ! जिसके ऊर्ध्वगामी जलसमूहकी विशाल भँवरोंमें पडनेवाले गजेन्द्रको भी ग्राह [मगर] ने रसातलको पहुंचाया उस तरंगोंसे व्याप्त, सागरगामिनी महानदीकी थाह लेनेको तुम कैसे उद्युक्त हुए ? (जिस कार्यमें बडोंकोही यश न आया उसके करनेको छोटोंका कटिबद्ध होना मूर्खतामात्र है) ॥

पिब स्तन्यं पोत त्वमिह मददन्तावलधिया
दृगन्तानाधत्से किमिति हरिदन्तेषु परुषान् ॥
त्रयाणां लोकानामपि हृदयतापं परिहरन्
अयं धीरं धीरं ध्वनति नवनीलो जलधरः ॥ ६० ॥

---

१ में क्रीडा करनेको ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे सिंह किशोर ! तुम दुग्ध पान करो, मत्तगजेन्द्रकी भ्रांति करके दिशाओंकी ओर कठोर दृष्टिसे न देखो (क्योंकि जिसे तुम उन्मत्त हस्ती समझते हो वह) यह त्रैलोक्यकी तापको हरनेवाला और गंभीर ध्वनि करनेवाला नीलवर्ण नवीन जलधर है (किसी सत्पुरुषको अपना शत्रु जान उसके ऊपर क्रोध करनेवाले राजकुमारका वृत्तांत प्रतीत होता है) ॥

धीरध्वनिभिरलं ते नीरद मे मासिको गर्भः ।
उन्मदवारणबुद्ध्या मध्येजठरं समुच्छलति ॥ ६१ ॥

(सिंहनी कहती है कि) हे मेघ ! तू अपनी गंभीरध्वनिको बस कर क्योंकि तेरे शब्दको मत्तगजेंद्रकी गर्जना समझ एक महीनेका ममगर्भस्थ बालक उदरमें उछलने लगता है (प्रतापी पुरुषोंको गर्भमेंभी वैरीका नाद सहन नहीं होता) इस आर्यामें 'संबंधातिशयोक्ति' अलंकार है ।

वेतंडगंडकंडूतिपांडित्यपरिपंथिना ॥
हरिणा हरिणालीषु कथ्यतां कः पराक्रमः ॥ ६२ ॥

गजगंडस्थलकी कंडू [खुजली] को नाश करनेवाला सिंह हरिणोंमें अपने किस पराक्रमको वर्णन करे ? (वीर मनुष्य स्व समान पुरुषोंहीमें अपना पराक्रम प्रकट करते हैं नीचोंमें नहीं) ॥

नीरान्निर्मलतो जनिर्मधुरता वामामुखस्पर्धिनी
वासो यस्य हरेः करे परिमलो गीर्वाणचेतोहरः ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

सर्वस्वं तदहो महाकविगिरां कामस्य चाम्भोरुह ।
त्वंचेत्प्रीतिमुरीकरोषि मधुपे तत्त्वां किमाचक्ष्महे॥ ६३

हे कमल !उत्पत्ति तेरी निर्मल जलसे है, मधुरता तेरी स्त्रीमुखमाधुर्यकी भी ईर्षा करती है, वास तेरा नारायणके हाथमें है, सुगंध तेरी देवताओंके चित्तको हरणकरती है और स्वयं तू महाकवियोंकी वाणी तथा कामदेवका सर्वस्व है (इतने अपूर्व गुण तुझमें होकर भी) तू मधुपसे प्रीति रखता है (तस्मात्) अब हम तुझसे क्या कहें ? अर्थात् तू नितान्त श्रेष्ठ है (सत्पुरुष उच्च पदवीको प्राप्त होनेपै लघुजनोंसे घृणा नहीं करते किंतु यदि वे किसी कार्यार्थ उनके निकट आवे तो उचित सत्कार करके उनकी इच्छा पूर्ण करते हैं) ॥

लीलामुकुलितनयनं किंसुखशयनं समातनुषे ॥
परिणामविषमहरिणा करिनायक वर्द्धते वैरम् ॥ ६४॥

हे गजेन्द्र ! प्रेमसे नेत्रोंको बंद करके तू आनंदसे क्यों शयन करता है ? (अरे तू नहीं जानता कि) परिणाममें विषमता [प्राणनाश] को पहुँचानेवाला सिंह वैरभाव बढाता जाता है (पर राज्यमें आकर निश्चित हो विलासानंदमें निमग्न होनेवाले राजाको कोई सत्पुरुष उपदेश देता है इस अन्योक्तिका उपयोग कई प्रसंगोंमें हो सकता है) ॥

विदुषां वदनाद्वाचः सहसा यांति नो बहिः ॥
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव ॥ ६५ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

विद्वानोंके मुखसे सहसा (बिना विचारे) कोई शब्द नहीं निकलता यदि निकले तो हाथीके दंत समान निकल कर पराङ्मुख (मिथ्या) नहीं होता. (भाव सरल है—इसमें 'पूर्णोपमा' अलंकार जानना) ॥

औदार्यं भुवनत्रयेऽपि विदितं संभूतिरम्भोनिधे-
र्वासो नन्दनकानने परिमलो गीर्वाणचेतोहरः ॥
एवं दातृगुरोर्गुणाः सुरतरोः सर्वेऽपि लोकोत्तराः
स्यादर्थिप्रवरार्थितार्पणविधावेको विवेकोयदि ॥ ६६ ॥

हे सुरतरु ! उदारता तेरी त्रिभुवनमें विदित है, उत्पत्ति तेरी सागरसे है, निवास तेरा नन्दनवनमें है, सुगन्ध तेरी देवताओंके भी चित्तको हरण करती है. इस प्रकार तुझ दानिश्रेष्ठके ये गुण, यदि तू याचकोंकी इच्छा पूर्ण करनेमें विवेक धारण करता तो परमोत्तम होते (याचक दान लेनेके योग्य हैं अथवा नहीं इसका विचार न करना दाताओंको उचित नहीं) ॥

एको विश्वसतां हराम्यपघृणः प्राणानहं प्राणिना-
मित्येवंपरिचिन्त्य मा स्वमनसि व्याधाऽनुतापं कृथाः॥
भूपानां भवनेषु किंच विमलक्षेत्रेषु गूढाशयाः
साधूनामरयो वसंति कति नो त्वत्तुल्यकक्षाः खलाः६७

हे व्याध ! तू अपने मनमें इस प्रकारकी चिंता करके सन्तापित न हो कि संसारमें प्राणियोंके प्राण नाश करनेवाला मैंही एक मात्र निर्दई हूं (अरे) साधुओं (सत्पुरुषों) के प्राणाधिन

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

करनेवाले और गूढ अभिप्रायवाले (मुखमें एक मनमें दूसरी बातके रखनेवाले) तेरे समान दुष्टजन राजमंदिरों या श्रेष्ठ तीर्थोंमें थोडे नहीं हैं अर्थात् बहुत हैं (तात्पर्य यह कि क्षेत्रों और राजद्वारोंमें भी अनीति होती है। इस श्लोकमें व्याधकी सामान्यता और खलोंकी विशेषता वर्णन की इससे अर्थान्तर न्यासालंकार हुआ) ॥

विश्वास्य मधुरवचनैः साधून्ये वंचयंति नम्रतमाः ॥
तानपि दधासि मातः काश्यपि यातस्तवापि च विवेकः ॥ ६८ ॥

हे वसुंधरे जननि ! तेराभी विवेक जाता रहा (क्योंकि शरण आएहुओंमें पात्रापात्रका विचार न कर सबका रक्षण करनेको उद्यता हो) उन मनुष्योंको भी तू अपने ऊपर धारण करती है जो मधुर वचनोंसे विश्वास उत्पन्न करके साधुओंसेभी छल करते हैं (सज्जन, शरणागतके दोषोंपै ध्यान न देकर उसका परिपालन नहीं करते हैं । तेरा भी विवेक गया इस प्रकारसे पृथ्वीकी निंदा करके उसके परोपकारगुणका वर्णन किया इससे इस आर्यामें ' व्याजस्तुति ' और ' व्याजनिंदा ' अलंकारकी संसृष्टि हुई) ॥

अन्या जगद्धितमयी मनसः प्रवृत्तिः ।
अन्यैव कापि रचना वचनावलीनाम् ॥
लोकोत्तरा च कृतिराकृतिरार्तहृद्या ।
विद्यावतां सकलमेव गिरां दवीयः ॥ ६९ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

विद्वानोंके व्यापार वाणीसे वर्णन नहीं हो सकते. संसारका हित करनेवाली उनकी चित्तवृत्ति एक प्रकारकी और उनके बोलने चालनेकी पद्धति और ही प्रकारकी होती है, उनके कार्य लोकोत्तर हुआ करते हैं और उनका स्वरूप दुःखियोंके दुःखका हरण करनेवाला होता है. (सामान्य रीतिसे विद्वान प्रशंसा है) ॥

आपद्गतः किल महाशयचक्रवर्ती
विस्तारयत्यकृतपूर्वमुदारभावम् ॥
कालागुरुर्दहनमध्यगतः समन्ता-
ल्लोकोत्तरं परिमलं प्रकटीकरोति ॥ ७० ॥

श्रेष्ठजन आपत्तिकालमें उस उदारताको विस्तार करते हैं जिसे उन्होंने पहिले कभी (सुखावस्थामें) नहीं प्रकाश किया था (सत्यही है) अग्निमें रखनेसे कालागुरु अपनी परमोत्तम सुगंधको प्रकट करता है । तात्पर्य यह कि सत्पुरुष उदार तो होते ही हैं परंतु विपत्तिमें वे अपने विशेष उदारत्वको प्रकट करतेहैं (इस श्लोकमें सत्पुरुषोंके उदारत्वका सामान्य रीतिसे वर्णन करके कालागुरुके विशेष उदाहरणसे अर्थको दृढ किया इससे 'अर्थांतरन्यास' अलंकार हुआ) ॥

विश्वाभिरामगुणगौरवगुम्फितानाम्
रोषोऽपि निर्मलधियां रमणीय एव ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

लोकम्पृणैः परिमलैः परिपूरितस्य
काश्मीरजस्य कटुतापि नितांतरम्या ॥ ७१ ॥

संसारमें परमोत्तम गुणगौरवको धारण करनेवाले निर्मल बुद्धि पुरुषोंका क्रोधभी मनोहर होता है मनुष्योंको संतोष देनेवाली सुगंधसे परिपूरित केशर [कुंकुम] की कटुताभी अच्छी लगती है (इसमेंभी 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है) ॥

लीलालुण्ठितशारदापुरमहासम्पद्भराणां पुरो
विद्यासद्मविनिर्गलत्कणमुषो वल्गन्ति चेत्पामराः ॥
अद्य श्वः फणिनां शकुंतशिशवो दन्तावलानां शशाः
सिंहानाञ्च सुखेन मूर्द्धसुपदं धास्यंति शालावृकाः ॥७२

पंडितोंके मुखसे निकले हुए दो चार शब्दोंकी चोरी करके यदि दुष्टजन, लीलासे शारदापुरकी संपत्ति [पांडित्य] की लूटनेवाले अर्थात् महाविद्वान् पुरुषोंके सन्मुख प्रगल्भता करैं तो (यह समुझना) कि आज कालमें सर्पोंके शिरपै पक्षियोंके बालक, गजोंके शिरपै शशा और सिंहों-के शिरपै शृगाल पैर रक्खैंगे (इसमें प्रस्तुत मूर्खोंका वर्णन करके अप्रस्तुत शशा, शृगालादिका वृत्त कह उनके गुणकी सादृश्यता सूचित की इससे 'तुल्ययोगिता' अलंकार हुआ यदि पंडितोंके सन्मुख मूर्ख वाचालता करने लगैं तो शृगालोंका सिंहोंके मस्तकपै पाद रखना इत्यादि कुछ आश्चर्य नहीं इस प्रकार कहनेसे 'काव्यार्थपत्ति' अलंकारभी भासित हुआ) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम् । अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति[१] ॥ ७३ ॥

गुरुके कठोर शब्दोंसे जिनका तिरस्कार होता है वेही मनुष्य महत्वको प्राप्त होते हैं. विना खरादपै चढाई हुई मणियां राजाओंके मुकुटमें कदापि वास नहीं पातीं ('अर्थांतरन्यास ' अलंकार है) ॥

वहति[२] विषधरान् पटीरजन्मा शिरसि मषीपटलं दधाति दीपः । विधुरपि भजतेतरां कलंकं पिशुनजनं खलु बिभ्रति क्षितीन्द्राः ॥ ७४ ॥

चंदन सर्पोंको शिरपर रहने देता है; दीपक कालिमाको रखता है. चन्द्रमा कलंकको धारण करता है ! (और) नरेश दुष्टजनोंको (अपने समीप भागमें) स्थान देते हैं (इस श्लोकमें वहति, दधाति, भजति और बिभ्रति इन चारों क्रियाओंका एकहीसा अर्थ होता है इससे यदि इनमेंसे एकही लिखा जाता तोभी चारोंका बोध हो जाता परंतु ऐसा न करके प्रत्येक कर्ताकी क्रिया पृथक् पृथक् लिखी इससे ' अर्थावृत्तिदीपक ' अलंकार हुआ) ॥

सत्पूरुषः खलु हिताचरणैरमन्दमानन्दयत्यखिललोकमनुक्त एव ॥ आराधितः कथय केनकरैरुदारैरिन्दुर्विकाशयति कैरविणीकुलानि ॥ ७५ ॥

---

१ यह ' उपजाति ' छंद है । २ 'पुष्पिताग्रा' छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

सत्पुरुष बिना कहे ही अपने हितकर आचरणसे अखिल-लोकको परमानन्दित करते हैं । कहिये चन्द्रमाकी किसने आराधना [पूजा] की है कि जिससे वह अपनी उदार किरणोंसे कुमोदिनी कुलको विकसित करता है ? (अर्थात् सज्जन स्वभावहीसे जगत्का हित करते हैं किसीको उन्हें कहनेकी आवश्यकता नहीं पडती । सत्पुरुषका वृत्तांत वर्णन करके चन्द्रमाका उदाहरण दिया इससे ' दृष्टांत ' अलंकार हुआ) ॥

कृतमपि महोपकारं पय इव पीत्वा निरातङ्कम् ॥
प्रत्युत हन्तुं यतते काकोदरसोदरखलो जगति॥७६॥

सर्पके समान संसारमें खल मनुष्य अपने ऊपर किये गये महदुपकारको दुग्ध सदृश निर्भय पान करके उलटा (उपकार करनेवालेके) प्राण लेनेको उद्यत होते हैं (इसमें ' पूर्णोपमा ' अलंकार है—उपमान, उपमेय, वाचक और धर्म सब मिलते हैं) ॥

खलः कापट्यदोषेण दूरेणैव विसृज्यते ॥
अपायशंकिभिर्लोकैर्विषेणाशीविषो यथा ॥ ७७ ॥

आपत्तिकी शंकासे, विष होनेके कारण सर्पके समान कपट दोषयुक्त खल, दूरहीसे त्याग किया जाता है ॥

पाण्डित्यं परिहृत्य यस्य हि कृते बान्दित्वमा-
लम्बितं दुष्प्राप्यं मनसापि यो गुरुतरैः क्लेशैः
पदं प्रापितः ॥ रूढस्तत्रस चेन्निगीर्य सकलां

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

पूर्वोपकारावलीं दुष्टः प्रत्यवतिष्ठते तदधुना कस्मै किमाचक्ष्महे ॥ ७८ ॥

पांडित्यको त्याग (राजाके सन्मुख) वंदित्व [वंदीजनों अर्थात् प्रशंसा करनेवालोंके धर्मका] अवलंबन करके वह पदवी जो चित्तसे भी मिलनेको महा कठिन थी, मैंने जिस दुष्टको महत क्लेशसे प्राप्त कराया वह पदपै आरूढ हो मेरे पूर्वकृत सर्वोपकारोंका कौर [विस्मरण] करके उलटा शत्रुभाव प्रकट करता है इससे अब इस समयमें मैं किसके पास जाऊँ और क्या कहूं ? अर्थात् अब कुछ भाषण करनेका अवसर ही नहीं ॥

परार्थव्यासंगादुपजहदपि स्वार्थपरतामभेदैकत्वं यो वहति गुणभूतेषु सततम् ॥ स्वभावाद्यस्यान्तः स्फुरति ललितोदात्तमहिमा समर्थो यो नित्यं स जयतितरां कोऽपि पुरुषः ॥ ७९ ॥

स्वार्थका त्याग करके परार्थके लिये सर्व मनुष्योंको जो संतत भेदरहित एक भावसे देखते (शब्दार्थ–प्राणियोंके प्रति भेदविगत एकत्वको संतत धारण करते हैं) जिनके अंतःकरणमें स्वभावहीसे (दूसरोंकी) सुन्दर तथा श्रेष्ठ महिमा स्फुरण होती है और जो नित्य (दूसरोंके निवारण करनेमें) समर्थ हैं ऐसे सत्पुरुष (संसारमें) जय पावैं ! (साधारण सज्जन प्रशंसा है । इसमें ' समासोक्ति ' अलंकार है । इस श्लोकमें ' तत्पुरुष समास ' और सत्पुरुष [सज्जन] की समता पाई जाती है

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अर्थात् जो गुण 'तत्पुरुषसमास' में अर्थ भेदसे होते हैं वही सत्पुरुषके भी कहे हैं) ॥

वंशभवो गुणवानपि सङ्गविशेषेण पूज्यते पुरुषः ।
नहि तूंबीफलविकलो वीणादण्डः प्रयाति महिमानम् ॥ ८० ॥

सद्वंश [उत्तम कुल] में जन्म पाने और गुणवान् होनेपै भी सत्संगसे मनुष्य पूज्य होता है (अर्थात् विना सत्संगके इन गुणोंसे युक्तभी मनुष्य शोभास्पद नहीं होता) वीणाका दंड जो वांसका बनता है विना तुंबीके महिमा नहीं पाता ॥

अमितगुणोऽपि पदार्थो दोषेणैकेन निन्दितो भवति ॥
निखिलरसायनमहितो गन्धेनोग्रेणलशुन इव ॥ ८१ ॥

अनेक गुणसम्पन्न पदार्थ एक दोषके होनेसे भी निन्दित गिना जाता है ! सर्व औषधियोंमें श्रेष्ठ लहसुन जैसे अपने तीक्ष्ण गंधके कारण निंद्य है (इसमें 'पूर्णोपमा' है) ॥

उपकारमेव तनुते विपद्गतः सद्गुणो नितराम् ॥
मूर्च्छां गतो मृतो वा निदर्शनं पारदोऽत्र रसः ॥८२॥

सज्जन विपत्तिमें भी उपकार करते हैं, इसमें मृतक अथवा मूर्छित (अर्द्ध मृतक (पारद) पारा) रस दृष्टांत है । अर्थात् पारा चाहै मृतक हो चाहै अर्द्ध मृतक हो परन्तु गुण वह अवश्य करैगा (दृष्टांतालंकार है) ॥

---

१ 'वंश' शब्द श्लिष्ट है; उसका अर्थ 'कुल' का और 'वांस' काभी है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

वनांते खेलन्ती शशकशिशुमालोक्य चकिता भुजप्रांतं भर्तुर्भजति भयहर्तुः सपदि या। अहो सेयं सीता दशवदननीता हलरदैः परीता रक्षोभिः श्रयति विवशा कामपि दशाम् ॥ ८३ ॥

वनमें क्रीडा करती हुई जो सीता एक शशाके बालककोभी देख चकित हो भयके नाश, करनेवाले अपने पति श्रीरामचन्द्र-जीको, आलिंगन करती थी, हाय अब वही दशाननसे हरणकी हुई और बडे बडे हल समान दन्तोंवाले पक्षियोंसे व्याप्त, परवश कैसी दशा (अर्थात्–दुर्दशा) को प्राप्त हैं ! (सुठ राजाकी राज्यसे दुष्ट राजाकी राज्यमें विवश वास करनेवाली पीडित प्रजाका वृत्तांत प्रतीत होता है) ॥

पुरो गीर्वाणानां निजभुजबलाहोपुरुषिकामहोकारं पुरभिदि शरं सम्मुखतया ॥ स्मरस्य स्वर्बालानयनशुभमालार्चनपदं वपुः सद्यो भालानलभासितजालास्पदमभूत् ॥ ८४ ॥

देवताओंके सन्मुख अपने भुजबलके अहंकारको वारंवार कहनेवाले और शङ्करके ऊपर बाणको चलानेवाले कामका (भी) शरीर, जिसका (अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण) देवांगनाभी दर्शन करतीं थीं (शंकरके) मस्तकसे उत्पन्न हुई अग्निसे जलकर शीघ्रही भस्म हो गया ! तात्पर्य-परम पराक्रमी स्वरूपवान् और गुणवान् पुरुषभी महात्माओंका अपकार करनेसे नष्ट हो जाते हैं (काम शंकरको विजय करनेकी इच्छासे

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

गया परंतु वहां वह स्वयं भस्म हुआ अर्थात् कारण कुछ कारज कुछ हुआ इससे 'विषम अलंकार' समझना) ॥

युक्तं सभायां खलु मर्कटानां शाखास्तरूणांमृदुलासनानि । सुभाषितं चीत्कृतिरातिथेयी दंतैर्नखाग्रैश्च विपाटनांनि ॥ ८५ ॥

बंदरोंकी सभामें वृक्षोंकी शाखाओंकेही मृदुल आसन चीत्कारहीके सुभाषित और दंतों और नखोंसे काटनेहीके अतिथि सत्कारका होना उचित है (अविचारी मनुष्य जो चाहते हैं; करते हैं न बैठनेके स्थानमें बैठते हैं, न कहनेकी बात कहते हैं और न करनेका कार्य करते हैं । (चीत्कार मारना दंतोंसे दंश करना इत्यादि कपिकी नीच जातिका धर्महीं है ऐसा कहनेसे 'सम' अलंकार हुआ) ॥

किं तीर्थं हरिपादपद्मभजनं किं रत्नमच्छा मतिः किं शास्त्रं श्रवणेन यस्य गलति द्वैतांधकारोदयः । किं मित्रं सततोपकाररसिकं तत्त्वावबोधःसखे कः शत्रुर्वद खेददानकुशलो दुर्वासनासंचयः ॥ ८६ ॥

नारायणके चरणकमलका भजन है तो तीर्थोंसे क्या ? मति श्रेष्ठ है तो रत्नोंसे क्या ? जिसका श्रेष्ठ द्वैत[3] पी अंधकार नष्ट हो गया है उसको शास्त्रोंके श्रवण करनेसे क्या ? जिसे सर्व

१ 'उपजाति' छंदहै यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्राके मेलसे वर्तताहै।
२ अच्छे भाषण ३ ईश्वर और जीवमें भेद मानना ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

तत्त्वोंका बोध है उसे संतत उपकार करनेवाले मित्रोंसे क्या? और परम क्लेशकारी दुर्वासनासे (बढके) शत्रु क्या ? हे मित्र ! यह तू तुझसे कह ? (इस श्लोकमें तीर्थादिक उपमेयोंकी निरर्थकता वर्णन करनेसे 'प्रतीप' अलंकार हुआ) ॥

निष्णातोऽपि च वेदान्ते साधुत्वं नैति दुर्जनः ।
चिरं जलनिधौ मग्नो मैनाक इव मार्दवम् ॥ ८७ ॥

सर्वदा समुद्रमें निमग्न रहतेभी मैनाक पर्वत जैसे कोमलताको नहीं प्राप्त होता, वैसे दुर्जन मनुष्य वेद पारंगत होनेपरभी साधुताको नहीं धारण करता (इससे 'पूर्णोपमा और 'अवज्ञा' अलंकारकी संसृष्टि है) ॥

नैर्गुण्यमेव साधीयो धिगस्तु गुणगौरवम् ॥
शाखिनोऽन्ये विराजंते खंड्यंते चंदनद्रुमाः ॥ ८८ ॥

गुण गौरव (गुणज्ञता) का धिक्कार करके अर्थात् अपने गुण प्रकट न करके निर्गुणताही (भावार्थ मौनताही) धारण करना उचित है (क्योंकि जैसे वनके अपर वृक्षोंके होतेभी चंदनही काटा जाता है) उसी प्रकार गुणीजनही अधिक त्रास दिये जाते इसमें ('अर्थान्तरन्यास' अलंकार है) ॥

परोपसर्पणानंतचिंतानलशिखाशतैः ॥
अचुम्बितांतःकरणाः साधु जीवंति पादपाः ॥ ८९ ॥

दूसरेके आगमनकी चिंतारूपी अनलकी शिखा [ज्योति] ने जिनके अंतःकरणको नहीं चुंबन किया अर्थात् नहीं जलाया

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

उन वृक्षोंका जीवन श्रेष्ठ है (पादपान्योक्तिसे कवि यह जताता है कि कार्यार्थ दूसरे पुरुषोंके आनेसे जो दुक्खी नहीं होते अर्थात् प्रसन्नतापूर्वक उनको इच्छा शक्त्यनुसार पूर्ण करनेको तत्पर रहते हैं वेही धन्य हैं । इससे यहभी ध्वनित होता है कि आत्मनिंदा करता है और कहता है कि दूसरोंको पत्र, फल, पुष्प देनेमें तनिक भी शंका न करनेवाले वृक्षोंका जीवन सुफल है; मेरा नहीं, क्यों कि मेरी दशा उनकी दशासे विपरीत है) ॥

शून्येऽपि च गुणवत्तामातन्वानः स्वकीयगुणजालैः । विवराणि मुद्रयन् द्रागूर्णायुरिव सुजनो जयति ॥ ९० ॥

अपने गुणगणोंसे मूर्खोंके हृदयमें भी गुणज्ञताको स्थापन करनेवाले और (उनके) छिद्रोंको शीघ्र ही छिपानेवाले मकरीके समान सज्जन पुरुष (संसारमें) जय पावें ' पूर्णोपमा यह बहुत ठीक दी है सज्जन अपने गुणोंसे मूर्खोंके शून्य हृदयको आच्छादन करते हैं मकरी अपने तंतुओं (गुणों) से शून्य स्थलको आवृत करती है; सज्जन दोषोंके दुरानेमें प्रवीण होते हैं, मकरी छिद्रोंके) ॥

खलः सज्जनकार्पासरक्षणैकहुताशनः ॥
परदुःखाग्निशमने मारुतः केन वर्ण्यताम् ॥ ९१ ॥

(संसारमें) दुष्ट मनुष्य, सज्जनरूपी कपासको दग्ध करनेके लिये अनल और परदुःखरूपी अग्निको (शमन करनेके लिये)

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

पवनके (समान) हैं (इनका) कौन वर्णन करसकता है ? (इसमें खलों और सज्जनोंका समान रूपक कहा इससे ' अभेद रूपक ' अलंकार हुआ) ॥

परगुह्यगुप्तिनिपुणं गुणमयमखिलैः समीहितं
नितराम् ॥ ललितांबरमिव सज्जनमाखव इव
दूषयंति खलाः ॥ ९२ ॥

दूसरेकी गुह्य बातको गुप्त रखनेमें निपुण, गुणगणसंपन्न, सर्व प्रिय, सुंदर वस्त्र सदृश सज्जन पुरुषको, मूषकरूपी खल दूषित करते हैं (' पूर्णोपमा ' है; वस्त्र और सज्जनकी सादृश्यमें जो विशेषण कहे वे द्व्यर्थिक हैं, सज्जन दुसरेकी गोपन करने योग्य बातको गुप्त रखते हैं, वस्त्र शरीरके गुह्य भागको आच्छादन करता है, सज्जन गुणवान् होते हैं वस्त्र गुण (तंतु–तागा) युक्त होता है; सज्जन सब प्रिय होते हैं वस्त्र भी सबको प्रिय है) ॥

कारुण्यकुसुमाकाशः शान्तिशैत्यहुताशनः ॥
यशःसौरभ्यलशुनःखलःसज्जनदुःखदः ॥ ९३ ॥

सत्पुरुषोंको दुःख देनेवाले दुष्ट मनुष्य करुणारूपी कुसुम [पुष्प] को आकाशके समान हैं अर्थात् जैसे आकाशमें पुष्पका होना असंभव है वैसे इनके हृदयरूपी आकाशमें करुणारूपी कुसुमका होना भी संभव नहीं; शांतिरूपी शीतलताको अग्निके समान हैं अर्थात् जहां अग्नि है वहां शीतलता क्यों

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dey Prayag. Digitized by eGangotri

निकट आवेगी और यशरूपी सुगंधको लशुन [लहसुन] के समान हैं, लशुनमें उग्रगंध होनेके कारण उसके पास अपर सुगंध नहीं आती यह जगत्प्रसिद्ध बात है। (इसमें 'अभेदरूपक' अलंकार है)॥

धत्ते भरं कुसुमपत्रफलावलीनां मर्मव्यथां स्पृशति शीतभवां रुजं च ॥ यो देहमर्पयति चान्यसुखस्य हेतोस्तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमोऽस्तु ॥ ९४ ॥

जो (परोपकारार्थ) फल, फूल और पत्रोंके भारको धारण करता है, मर्मस्थानोंकी वेदना (शाखा इत्यादिकके काटनेके दुःख) तथा (अधिक) शीत पडनेसे उत्पन्न हुए रोगोंको सहन करता है और दूसरोंके सुखके हेतु अपने शरीरतकको अर्पण करता है उस दानशूर वृक्षको मैं नमस्कार करता हूं (संतत परोपकार करनेवाले सत्पुरुषोंका स्वभाव तरुवरोंहीकासा होता है) ॥

हालाहलं खलु पिपासति कौतुकेन कालानलं परिचुचुम्बिषति प्रकामम् ॥ व्यालाधिपञ्च यतते परिरब्धुमद्धा यो दुर्जनं वशयितुं कुरुते मनीषाम् ॥९५॥

जो मनुष्य दुर्जनके वश करनेकी बुद्धिको उपराजता है वह (मानो) हलाहलको पान, कालाग्निको भली भांति चुंबन और प्रत्यक्ष भुजंगराजको आलिंगन करनेकी इच्छा करता है (दुष्टके वशीकरणका यत्न करनेसे मनुष्य नाशको प्राप्त होता है यह भाव) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

दीनानामिह परिहाय शुष्कसस्यान्यौदार्य्यं प्रकट-
यतो महीधरेषु ॥ औन्नत्यं परममवाप्य दुर्मदस्य
ज्ञातोऽयं जलधर तावकोऽविवेकः ॥ ९६ ॥

हे जलधर ! दीनजनोंके शुष्क धान्य (खेतों) को त्याग करके पर्वतोंके ऊपर अपनी उदारताको प्रकट करनेवाले और अत्यंत उन्नतताको प्राप्त होनेवाले तुझ दुर्मदका अविवेक मुझको विदित है (पात्रापात्रका विचार न करके दान देनेवाले भूपति अथवा अपर दानी मनुष्यका वृत्तांत ध्वनित होता है) ॥

गिरयो गुरवस्तेभ्योऽप्युर्वी गुर्वी ततोऽपि जग-
दण्डम् ॥ तस्मादप्यतिगुरवः प्रलयेप्यचला महा-
त्मानः ॥ ९७ ॥

पर्वत श्रेष्ठ हैं, पर्वतोंसे पृथ्वी श्रेष्ठ है (क्योंकि पृथ्वी पर्वतोंको धारण करती है) पृथ्वीसे ब्रह्मांड श्रेष्ठ है (कारण ब्रह्मांड पृथ्वीका आधार है) ब्रह्मांडसे महात्माजन श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे प्रलयकालमें भी अचल रहते हैं अर्थात् उस समयमें भी उनका नाश नहीं होता (इस आर्यामें उत्तरोत्तर श्रेष्ठत्व वर्णन किया इससे ' सार ' अलंकार हुआ) ॥

व्योम्नि स वासं कुरुते चित्रं निर्माति सुन्दरं पवने ॥
रचयति रेखाः सलिले चरति खले यस्तु
सत्कारम् ॥ ९८ ॥

---

१ 'प्रहर्षिणी' वृत्त

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

जिसने खलका सत्कार (करके उसे प्रसन्न) किया उसने (मानो) आकाशमें वास किया, पवनमें सुंदर चित्र खींचा और पानीमें रेखा बनाई, (तात्पर्य-खलका प्रसन्न करना सर्वथैव असंभव है । इसमें ' उत्प्रेक्षा ' अलंकार है) ॥

हारं वक्षसि केनापि दत्तमज्ञेन मर्कटः ॥
लेढि जिघ्रति संक्षिप्य करोत्युन्नतमाननम् ॥ ९९ ॥

किसी मूर्ख मनुष्यके द्वारा हृदयमें (पहिनाये गये) हार (को मुखमें डाल उस) का स्वाद ले, सूंघ और (नेत्रोंके) निकट ले जाकर वानर मुखको उंचा उठाता है (अविज्ञ पुरुषको उत्तम पदार्थ देनेसे वह उसके गुणोंको न जान उलटा उसका निरादर तथा नाश करता है । जो वस्तु खानेके योग्य नहीं उसे मुखमें मेलना और उसके साथ अनेक प्रकारकी चेष्टा करना कपिका स्वभावही है इससे ' स्वभावोक्ति ' अलंकार हुआ) ॥

मलिनेऽपि रागपूर्णां विकसितवदनामनल्पज-
ल्पेऽपि ॥ त्वयि चपलेऽपि च सरसां भ्रमर कथं
वा सरोजिनीं त्यजसि ॥ १०० ॥

हे भ्रमर ! तू कमलिनीको किस कारणसे त्याग करता है ? (अरे सुन) तू मलिन है (अर्थात् कृष्णवर्ण है,) तिसपै भी वह तुझसे अनुराग रखती है, तू वृथा बकवादी है (अर्थात् सर्वदा गुंजारही किया करता है;) परंतु वह विकाशित वदनही रहती है, तू चंचल है (अर्थात् तेरी चित्तवृत्ति चपल है, आज

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

एक पुष्पपै कल दूसरेपै रमण करता है इतनेपै भी वह सरस [रसवती] रहती है। (अनुरागादि गुणोंसे युक्त अपनी सती स्त्रीको त्यागनेवाले कामी पुरुषका वर्णन है तात्पर्य यह कि ऐसी सुलक्षण रमणीका परित्याग उचित नहीं ! प्रस्तुत कमलिनीका वृत्तांत अप्रस्तुत नायिकाके वर्णनमें घटित होता है इससे 'समासोक्ति' अलंकार हुआ) ॥

स्वार्थं धनानि धनिकात्प्रतिगृह्णतो यदास्यं भजे-
न्मलिनतां किमिदं विचित्रम् ॥ गृह्णन्परार्थमपि
वारिनिधेः पयोऽपि मेघोऽयमेति सकलोऽपि च
कालिमानम् ॥ १०१ ॥

अपने हेतु धनवानोंसे (याचनापूर्वक) धन ग्रहण करनेवाले मनुष्यके मुखका मलिन होना कुछ आश्चर्यजनक नहीं; (देखिये) परार्थभी सागरसे (धन संपत्ति तो दूर रही परंतु) जलभी लेनेसे संपूर्ण मेघ कालिमा [कृष्णवर्णत्व] को प्राप्त होते हैं । (यथार्थ है, संसारमें मांगनेसे नीच पदार्थ दूसरा नहीं, इस श्लोकमें 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है) ॥

जनकः सानुविशेषो जातिः काष्ठं भुजङ्गमैः सङ्गः ॥
स्वगुणैरेव पटीरज यातोऽसि तथापि महिमानम् १०२

हे चंदनवृक्ष ! पिता तेरा पर्वतका शिखर है; जाति तेरी काष्ठकी है, संग तेरा भुजंगमों [सर्पों] का है, तथापि (इतना होने पै भी) तू अपने गुणोंसे महिमाको प्राप्त होता है(इसमें

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अप्रस्तुत चंदनकी प्रशंसा करके उस सत्पुरुषका वृत्त वर्णन किया जो नीच कुलोत्पन्न और दुर्जनोंका संसर्गी होकर भी अपने सद्गुणोंसे अपनी कीर्ति संसारमें प्रसार करता है) ॥

कस्मै हन्त फलाय सज्जन गुणग्रामार्ज्जने सज्जसि स्वात्मोपस्करणाय चेन्मम वचः पथ्यं समाकर्णय। ये भावा हृदयं हरन्ति नितरां शोभाभरैः सम्भृतास्तैरेवास्य कलेः कलेवरपुषो दैनन्दिनं वर्द्धनम् ॥ १०३ ॥

हे सज्जन! हाय, तू किस फलके अर्थ गुणगणोंका संचय करनेको कटिबद्ध होता है, यदि (यह अर्जन) आत्माके पोषणके लिये है तो मेरे हितकारी वचनोंको श्रवण कर, (मुझे कहना इतनाहीं है कि) जो मनोहर भाव तेरे मन जो हरण करते हैं वे इस शरीरपोषक (विषयासक्तताप्रवर्तक) कलिकाल की दुःखद अवस्था) को प्रतिदिन बढानेवाले हैं। (गुणगणों अर्थात् सत,रज वा तम गुणसंबन्धी वासनाको श्रेयस्कर जान उसीके लिये परिश्रम करनेवाले पुरुषको कवि यह उपदेश देता है कि तू इस विषयमें वृथा कष्ट न कर कलिके स्वभावके प्रभावसे जगद्वासनाओंमें जो प्रवृत्त होते हैं और शरीरको सुख देनेका प्रयत्न करते हैं वे मायापाशमें दृढतर बद्ध होते जाते हैं। यह श्लोक वेदांतप्रतिपादक है. सारांश यह कि जगजालको त्याग भगवत् शरण जानेहीमें सार्थकता है) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

धूमायिता दश दिशो दलितारविन्दा देहं दहन्ति दहना इव गन्धवाहाः । त्वामन्तरेण मृदुताम्रदलाम्रमञ्जुगुञ्जन्मधुव्रत मधो किल कोकिलस्य ॥ १०४ ॥

मृदुल और अरुण रंगके पर्णोंसे युक्त आम्र वृक्षमें मंजु गुंजार करते हैं मधुप जिस (ऋतु) में ऐसे हे मधु ! (ऋतुराज) तेरे विना कोकिल, प्रफुल्लित कमलोंसे परिपूर्ण दशों दिशा धूमित अर्थात् धूमसे परिप्लुत (दिखाई देती हैं) और सौरभको वहानेवाला यह पवन अग्निके तुल्य उसकी देहको दहन करता है (आश्रय वस्तुके वियोगसे जीवोंको सकल पदार्थ दुःखद हो जाते हैं यह भाव हैं) ॥

भिन्ना महागिरिशिलाः करजाग्रजाग्रदुद्दामशौर्यनिकरैः करटिभ्रमेण । दैवे पराचि करिणामरिणा तथापि कुत्रापि नापि खलु हा पिशितस्य लेशः ॥ १०८ ॥

करिवरशत्रु सिंहने बडे बडे पर्वतोंकी शिलाओंको हस्ती समझ अपने नखोंके प्रबल प्रतापसमूहसे विदारण किया; परंतु कष्टकी बात है कि दैव विपरीत होनेसे तौभी कहीं उसे मांसका लेश न मिला ! (शिलामें मांसका मिलना कैसे संभव हो सकता है तात्पर्य यह कि, ईश्वरके अनुकूल न होनेसे महान् पराक्रमी पुरुषोंको, चाहे वे जैसा उद्योग करैं, यश नहीं मिलता) ॥

गर्जितमाकर्ण्य मनागङ्के मातुर्निशार्द्धजातोऽपि ॥ हरिशिशुरुत्पतितुं द्रागङ्गान्याकुञ्च्य लीयते निभृतम् ॥ १०६ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

(मेघ अथवा हस्ती अथवा अपर किसी बली वनपशुकी) गर्जनाको श्रवण कर अर्द्ध रात्रिमें उत्पन्न हुआ सिंहकिशोर माताके गोदमें कुछ ऊपर उछल और शीघ्रही सब अंगोंको आकुंचित कर वहींका वहीं लीन होगया। अर्थात् अधिक शक्ति न होनेके कारण और कुछ न कर सका (तेजस्वी पुरुषोंका प्रकार विलक्षण होता है। सिंह सर्वदा गजके ऊपर आक्रमण करनेमें तत्पर रहता है परंतु इसमें स्वप्रकारकी विशेषता वर्णन की इससे 'संबंधातिशयोक्ति' अलंकार हुआ) ॥

किमहं वदामि खल दिव्यतमं गुणपक्षपातमभितो भवतः ॥ गुणशालिनो निखिलसाधुजनान् यदहर्निशं न खलु विस्मरसि ॥ १०७ ॥

हे खल! तू गुणज्ञ सर्व सज्जन पुरुषोंको निशि दिनमें (कभी भी) नहीं विस्मरण करता इससे मैं तेरे जगद्विख्यात दिव्यतम [परम श्रेष्ठ] गुणपक्षपातके विषयमें क्या कहूं ? (दुर्जन सर्वदा सत्पुरुषोंसे द्वेष रखते हैं ऐसा स्पष्ट न कहकर यह कहा कि तू उनको विस्मरण नहीं करता, इस प्रकारकी प्रशंसा करना निंदा हुई इससे इस श्लोकमें 'व्याजनिंदा' अलंकार समझना चाहिये) ॥

रे खल तव खलु चरितं विदुषां मध्ये विविच्य वक्ष्यामि ॥ अथवालं पापात्मन् कृतया कथयापि ते हतया ॥ १०८ ॥

---

१ 'प्रमिताक्षरा' छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अरे खल ! मैं तेरे (नष्ट) चरितोंको सत्पुरुषोंके बीचमें भली भांति प्रकट करूंगा (इस प्रकारका मेरा विचार था) परंतु हे पापात्मन् ! तेरे दुष्कृत्य (जिन्हें तू प्रत्यक्ष करता है, कहनेमें भी मेरा चित्त दुःखित होता है इससे उन महानिंद्य कर्मों) का उल्लेख भी बस है अर्थात् वैसा स्वमुखसे कहना भी मुझे असह्य है (इसमें खल चरित्र वर्णन करना अंगीकार करके फिर उसका निषेध किया इससे 'प्रतिषेध' अलंकार हुआ) ॥

आनंदमृगदावाग्निः शीलशाखिमदद्विपः ॥
ज्ञानदीपमहावायुरयं खलसमागमः ॥ १०९ ॥

(इस संसारमें) खलोंका समागम आनंदरूपी मृगके (नाश करनेके) लिये अग्नि, शीलरूपी वृक्षके (उखाडनेके) लिये मत्त हस्ती और ज्ञानरूपी दीपके (बुझानेके) लिये प्रचंड पवन है (इसमें आनंदमृग, शील शाखि, ज्ञानदीपके प्रति खलमें कोई भेद न रख उसी अकेलेको अग्नि द्विप और वायु बनाया इससे 'अभेदरूपक' अलंकार हुआ) ॥

खलास्तु कुशलाः साधुहितप्रत्यूहकर्मणि ।
निपुणाः फणिनः प्राणानपहर्तुंनिरागसाम् ॥ ११० ॥

निरपराधी जीवोंके प्राण हरण करनेमें (जैसे) सर्प प्रवीण होते हैं (वैसेही) सत्पुरुषोंके अहित करनेमें दुर्जन कुशल होते हैं (उपमेय जो साधु और उपमान जो सर्प इनके धर्ममें समानता कहनेसे 'प्रतिवस्तूपमा' अलंकार हुआ) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

वदने विनिवेशिता भुजंगी पिशुनानां रसनामिषेण
धात्रा । अनया कथमन्यथावलीढा नहि जीवंति
च नाम नागमन्त्राः ॥ १११ ॥

ब्रह्माने पिशुनजनों [पर छिद्र ढूँढनेवाले पुरुषों] के मुखमें जिह्वाके मिषसे सर्पिणी स्थापन की है, यदि (किसीको शंका उत्पन्न हो कि यह बात) अन्यथा है तो (उसके निवृत्त्यर्थ यही प्रश्न है कि जो जिह्वा भुजंगी नहीं तो) उससे किंचित् मात्र भी स्पर्श किये गये मंत्रहीन [अविवेकी] मनुष्य क्यों नहीं जीते अर्थात् क्यों प्राण त्याग करते हैं ? (इसमें दुर्जनोंकी जिह्वाको भुजंगी कहकर अर्थके दृढ करनेके लिये मनुष्योंका प्राण त्याग करना सहेतुक विशेषण दिया इससे 'काव्यलिंग' अलंकार हुआ । जिह्वाके धर्मको गोपन करके सर्पिणीके धर्मके आक्षेपणसे ' अपह्नुति ' अलंकार भी हुआ) ॥

कृतं महोन्नतं कृत्यमर्जितं चामलं यशः ॥
यावज्जीवं सखे तुभ्यं दास्यामो विपुलाशिषः ॥ ११२ ॥

हे मित्र ! तुमने परम श्रेष्ठ कार्य किया और विमल यश संपदा इससे मैं तुझे यावज्जीवन अनेकानेक आशीर्वचन देता रहूंगा (प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ हूं यह भाव) दूसरा अर्थ व्यंगसे ऐसा लगाना कि तूने उत्तम कृत्य किया अतएव विमल यशका भागी हुआ. इससे जबतक प्राण हैं मैं तुझे आशीश

---

१ यह ' माल्यभारा ' वृत्त है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

दिया करूंगा (अपकार करनेवालेकी इस प्रकार प्रशंसा करके तो दुष्ट कृत्यसे उत्पन्न हुआ दुःख कभी न भूलूंगा यह सूचित किया) ॥

अविरतं परकार्य्यकृतां सतां मधुरिमातिशये-
न वचोऽमृतम् । अपि च मानसमंबुनिधिर्य-
शोविमलशारदपार्वणचंद्रिका ॥ ११३ ॥

संतत परोपकार करनेवाले सत्पुरुषोंके वचन अत्यंत मधुर होनेसे अमृत (के तुल्य होते) हैं, हृदय सागर (के तुल्य) और यश शरत्कालके पूर्णिमाकी विमल चान्द्रिका (के तुल्य होता) है वचन और अमृत, हृदय और सागर, यश और चन्द्रिकाका समान स्वरूप प्रतिपादन किया इससे 'अभेदरूपक' अलंकार हुआ) ॥

एत्य कुसुमाकरो मे संजीवयिता गिरं चिरं म-
ग्नाम् ॥ इति चिंतयतो हृदये पिकस्य समधायि
शौभिकेन शरः ॥ ११४ ॥

वसंतके आनेसे मैं (अपनी) पुनरुज्जीवित की गई (मनोहर) वाणीमें (फिर) चिरकाल पर्यंत मग्न हो जाऊंगी इस प्रकार विचार करनेवाली कोकिलके हृदयमें व्याधने शर मारा (मनमोदक धरेही रहे, उलटा प्राण गया यह भाव है) ॥

निर्गुणः शोभते नैव विपुलाडंबरोऽपि ना ॥
आपातरम्यपुष्पश्रीशोभिता शाल्मलिर्यथा ॥ ११५ ॥

---

१ यह 'द्रुतविलंबित छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

भूमिपै (पतन होने पर्यंत रमणीय सुगंधहीन पुष्पोंसे शोभित शाल्मली वृक्षके सदृश विपुल आडंबर [बनावट] करनेसे भी मनुष्य शोभाको नहीं प्राप्त होते (मनुष्यका परम भूषण तो गुण है यदि वही नहीं तो वस्त्रालंकारोंसे कितनी शोभा हो सकेगी इसमें 'पूर्णोपमा' अलंकार है) ॥

पंकैर्विनासरो भाति सदः खलजनैर्विना ॥
कटुवर्णैर्विना काव्यं मानसं विषयैर्विना ॥ ११६ ॥

पंक [कीच] के विना सरोवरकी, दुर्जनोंके विना सभाकी, कठोर वर्णोंके विना काव्यकी और विषयवासनाके विना मनकी शोभा होती है (इसमें 'दीपक' और 'विनोक्ति' अलंकारका संकर है। 'शोभा' शब्द का अर्थ कई स्थानोंमें विना उसके प्रयोग कियेही भासित होनेसे 'दीपक' और सर्व उदाहरणोंमें कुछ न्यूनता होनेकी आवश्यकता प्रकट करनेसे 'विनोक्ति' अलंकार हुआ) ॥

तत्त्वं किमपि काव्यानां जानाति विरलो भुवि ॥
मार्मिकः को मरंदानामंतरेण मधुव्रतम् ॥ ११७ ॥

संसारमें काव्यके दुर्बोध भावोंको विरलेही जानते हैं मधुपके विना मकरंदके मर्मको कौन जान सकता है ? अर्थात् कविताके गूढ तत्त्वोंका ज्ञान पंडितोंहीको होता है (इसमें मधुपके दृष्टांतसे अर्थको दृढ किया इससे 'अर्थांतरन्यास' अलंकार हुआ) ॥

---

१ शाल्मली (सेमर) उस वृक्षका नाम है जिसमें रेशमके समान एक प्रकारकी रुई निकलती है।

२४५५
संस्कृत ला.
२४

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons- Dev Prayag. Digitized by eGangotri

सरजस्कांपांडुवर्णां कंटकप्रकरान्विताम् ॥
केतकीं सेवसे हंत कथं रोलंब निस्त्रप ॥ ११८ ॥

हे निर्लज्ज मधुकर ! रजःकणको धारण करनेवाली, पांडु-वर्ण, कंटकसमूहयुक्त केतकीकी, हाय तू कैसे सेवा करता है ? यह श्लोक द्व्यर्थ सूचक है; पक्षांतरमें 'सरजस्का' से रजस्वला । 'पांडुवर्णस पीतवर्णा और 'कंटकप्रकरान्विताम्' से रोमांचवती स्त्री समझना चाहिये (अप्रस्तुत भ्रमरवृत्तांत वर्णनसे रजस्वला रमणीका संग करनेवाले कामी पुरुषका वृत्त प्रतीत होता है) ॥

यथा तानं विना रागो यथा मानं विना नृपः ॥
यथा दानं विना हस्ती तथा ज्ञानं विना यतिः॥ ११९॥

जैसे तानके विना राग, मान [आदर] के विना नृप और मदोदकके विना हस्ती (शोभा नहीं पाता) वैसेही ज्ञानके विना यती [संन्यासी] सुशोभित नहीं होता (इसमें 'विनोक्ति' और 'उपमा' अलंकारकी संसृष्टि है) ॥

संतः स्वतः प्रकाशंते गुणा न परतो नृणाम् ॥
आमोदो नहि कस्तूर्य्याः शपथेन विभाव्यते॥ १२०॥

मनुष्योंके सद्गुण स्वयंही प्रकाश होते हैं, न कि दूसरों (के प्रकाश करने) से ! कस्तूरी की सुगंध शपथ (पूर्वक कहने) से नहीं जानी जाती अर्थात् जहां कस्तूरी होती है वहां उसकी परिमल आपही आप प्रकट होती है (मनुष्योंके उत्तम गुणोंका वर्णन करके कस्तूरीके दृष्टांतसे अर्थको दृढ किया इससे 'अर्था-न्तरन्यास' अलंकार हुआ) ॥

श्रीलक्ष्मीधर - विद्यामन्दिर,
देवप्रयाग (गढवाल-हिमालय)
व्यवस्थापक- पं. चक्रधरजोशी

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अपि बत गुरु गर्वं मास्म कस्तूरि यासीरखिलप-
रिमलानां मौलिना सौरभेण ॥ गिरिगहनगुहायां
लीनमत्यंतदीनं स्वजनकममुनैव प्राणहीनं करोषि१२१

हे कस्तूरीके ! अखिल परिमलोंमें श्रेष्ठ होनेसे तू (अपने मनमें) इतना गर्व न कर; हाय ! (क्या तू नहीं जानती) कि इसी सौरभसे तू, पर्वतकी अंधेरी गुहामें लीन हुए अत्यंत दीन अपने (उत्पन्न करनेवाले) पिता (मृग) का प्राण हरण करती है (अप्रस्तुत कस्तूरिका वृत्तांत वर्णन करके संपत्तिकी निंदा की है. यह तो प्रसिद्ध ही है कि लक्ष्मी जिसके पास होती है उसके प्राण चोर इत्यादिकोंसे हरेजानेका सदा भय रहता है। संपत्तिमान् पुरुषका भी वृत्तांत इससे प्रतीत होता है; क्योंकि जिस धनका वे गर्व करते हैं वही उनके प्राण लेनेका कारण होता है; इससे श्रीमंत होकर दर्प न करना चाहिये यह सूचित किया। कस्तूरीके गुणोंमें दोषारोपण करनेसे 'लेश' अलंकार हुआ) ॥

दूरीकरोति कुमतिं विमलीकरोति चेतश्चिरन्त-
नमघं चुलुकीकरोति ॥ भूतेषु किंच करुणां बहुली-
करोति संगः सतां किमु न मंगलमातनोति ॥१२२॥

सत्संग कौन कौन मंगल नहीं करता कुमतिको दूर करता है, अंतःकरणको विमल करता है, जन्मांतरोंके पापोंको घटाता है; (और) प्राणियोंमें दयाको बढाता है। (मंगल करना और अमंगल हरना यह सत्पुरुषोंका स्वभावही है इससे 'स्वभावोक्ति' अलंकार हुआ) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अनवरतपरोपकारव्यग्रीभवदमलचेतसां महताम् ॥
आपातकाटवानि स्फुरंति वचनानि भेषजानीव ॥ १२३

विमल अंतःकरणवाले (और) परोपकार (करनेकी चिंता) में निरंतर व्यग्र रहनेवाले सत्पुरुषोंके वचन औषधके समान आदिमें कटु होते हैं जैसे भेषज खानेके अनंतर गुण जान पडता है उसी प्रकार सुजनोंके कटु शब्द आगे महामंगलकारी होते हैं यह भाव. इस आर्यामें 'पूर्णोपमा' अलंकार है। 'पूर्णोपमा' में उपमान उपमेय, वाचक और धर्म चारों स्पष्ट रीतिसे दृश्य होते हैं) ॥

व्यागुंजन्मधुकरपुंजमंजुगीतान्याकर्ण्य श्रुतिमदजालयातिरेकात् ॥ आभूमीतलनतकंधराणि मन्येऽरण्येऽस्मिन्नवनिरुहां कुटुंबकानि ॥ १२४ ॥

मेरी जान मधुकरोंके झुण्डके गुंजाररूपी मंजुल गीता सुन गानमें मनके लीन होजानेसे इस वनके विवश वृक्षसमूहोंके कंधे [शाखैं] पृथ्वीतक झुक आई हैं अर्थात् उनकी डालियाँ भूमिपै लग गई हैं (पत्र फल अथवा पुष्पके भारसे नम्र होनेवाले वृक्षोंके उपर उत्प्रेक्षा की है—जहां कुछ तर्क किया जाता है वहां 'उत्प्रेक्षालंकार' होता है—यहां वृक्षोंके झुकनेका हेतु भ्रमरोंके गानका सुनना कहा इससे 'हेतूत्प्रेक्षा' अलंकार हुआ) ॥

मृतस्य लिप्सा कृपणस्य दित्सा विमार्गगायाश्च

---

१ 'प्रहर्षिणी' छंद है। २ 'उपेन्द्रवज्रा' छंद है।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

रुचिः स्वकांते ॥ सर्पस्य शांतिः कुटिलस्य मैत्री विधातृसृष्टौ न हि दृष्टपूर्वा ॥ १२५ ॥

मृतकका पुनरपि जीवन, कृपणका दातृत्व, व्यभिचारिणी स्त्रीकी निज पतिमें प्रीति, सर्पकी शांति और कुटिल मनुष्योंकी मित्रता ब्रह्मदेवकी सृष्टिमें कभी नहीं देखी गई अर्थात् इन सब बातोंका होना असंभव है (यह भी अर्थ इसमें भासित होता है कि कुटिलोंकी मित्रता संपादन करना कैसे संभव नहीं जैसे मृत मनुष्यका पुनरुज्जीवन कृपणका दान इत्यादि । अनेक पदोंका निर्वाह एक क्रियासे करनेसे इस श्लोकमें 'दीपक' अलंकार हुआ) ॥

उत्तमानामपि स्त्रीणां विश्वासो नैव विद्यते ॥
राजप्रियाः कैरविण्यो रमंते मधुपैः सह ॥ १२६ ॥

उत्तम स्त्रियोंका भी विश्वास न करना चाहिये; (देखिये) चन्द्रमाकी परमप्रिय कुमोदिनी [चन्द्रविकाशिनी कमलिनी] भ्रमरोंके साथ विहार करती हैं (स्त्रियोंमें विश्वास न करनेके अर्थको कुमोदिनीके उदाहरणसे समर्थन किया इससे 'काव्यलिंग' अलंकार हुआ) ॥

अयाचितः सुखं दत्ते याचितश्च न यच्छति ॥
सर्वस्वं चापि हरते विधिरुच्छृंखलो नृणाम् ॥ १२७ ॥

---

१ 'विधि' शब्दसे ब्रह्माका भी अर्थ होता है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

मनुष्योंकी स्वतंत्र (अर्थात् जो चित्तमें आवे वही करने-वाली) भाग्य, जिन्हैं न चाहिये उन्हैं सुख देती है. जिन्हैं चाहिये उन्हैं नहीं देती (और मनमें आनेसे जिसका चाहती है उसका) सर्वस्व तक हरण करती है । (तात्पर्य यह कि 'विधिगति अति बलवान् ') ॥

दोर्दण्डद्वयकुण्डलीकृतलसत्कोदण्डचण्डांशुग-
ध्वस्तोद्दण्डविपक्षमंडलमथ त्वां वीक्ष्य मध्येरण-
म् ॥ वल्गद्गाण्डिवमुक्तकाण्डवलयज्वालावली
ताण्डवभ्रश्यत्खाण्डवरुष्टपाण्डवमहो को न
क्षितीशः स्मरेत् ॥ १२८ ॥

(हे राजन् !) 'भुजद्वयसे चक्राकार किये गये शोभायमान धन्वासे (निकले हुए) तीव्र बाणों (के प्रहार) से परम परा-क्रमी शत्रुमंडलके विध्वंस करनेवाले आपको, समरभूमिमें अव-लोकन कर, कौन भूपाल (ऐसा है जो), घोर शब्द करनेवाले गांडीव नामक धनुषसे छुटे हुए शर समूहोंकी ज्वालाके नृत्य-से नष्ट होनेवाले खाण्डव वनमें रुष्ट पांडव [अर्जुन] का स्मरण न करे ? (युद्धविद्या प्रवीण राजाका स्तवन है । इसमें ' स्मृति' अर्थात् ' स्मरण' अलंकार है) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

खंण्डितानेत्रकञ्जालिमञ्जुरञ्जनपण्डिताः ॥
मण्डिताखिलदिक्प्रांताश्चण्डांशोः पान्तु भानवः॥१२९॥

इतिश्रीमत्पण्डितराजजगन्नाथकविविरचिते भामिनीविलासे प्रास्ताविको नाम प्रथमो विलासः ॥ १ ॥

खंडिता[1] नायिकाकी नेत्ररूपी कमल पंक्तियोंको सुख देनेमें कुशल (और) सर्व दिग्भागोंको शोभायमान करनेवाली सूर्यकी किरणों (आपकी) रक्षा करैं (यह श्लोक आशीर्वादात्मक है। प्रातःकालपर्यंत निद्रित किसी राजा अथवा अपर किसी सत्पुरुषको कवि इस श्लोकसे आशीर्वाक्य कहते हुए निद्रा त्याग करना सूचित करता है) ॥

भामिनीविलासके प्रास्ताविक नामक प्रथम विलासका प्राकृत भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥

---

१ खंडिता उस नायिकाको कहते हैं जिसका पति सर्व रात्र दूसरी स्त्रीके साथ व्यतीत कर प्रातःकाल अपने गृह आता है ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

श्रीः ।

अथ भामिनीविलासे ।

द्वितीयः शृंगारविलासः ।

न मनागपि राहुरोधशंका न कलंकानुगमो न पांडुभावः ॥ उपचीयत एव कापि शोभा परितो भामिनि ते मुखस्य नित्यम् ॥ १ ॥

हे भामिनि ! तेरे मुख (चंद्र) के आस पास अवर्णनीय शोभा नित्यही रहती है, न तो उसे राहुसे तनिक भी आच्छादित होनेकी शंका, न कलंकका अनुगम और न पांडु वर्ण (होनेका भय) अर्थात्–चंद्रमामें ये तीन दोष हैं परंतु तुझमें इनमेंसे एक भी नहीं इससे तेरे निष्कलंक मुखका परम शोभायमान होना उचित ही है । (चंद्रमा उपमान और भामिनी-मुख उपमेय है, उपमानसे उपमेयमें विशेषता वर्णन की इससे 'व्यतिरेक' अलंकार हुआ) ॥

नितरां परुषा सरोजमाला न मृणालानि विचार-पेशलानि ॥ यदि कोमलता तवांगकानामथ का नाम कथापि पल्लवानाम् ॥ २ ॥

---

१ यह 'माल्यभारा छंद है । २ 'माल्यभारा' छंद ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

(अब जगन्नाथ रायजी अंगकी कोमलताका वर्णन करते हैं और कहते हैं, हे भामिनि !) यदि तेरे अंगकी कोमलता (की अपर पदार्थसे साम्यता करना चाहैं तो असंभव) है; सरोजमाल (तेरी कोमलता सन्मुख) अत्यंत कठोर (लगते है,) कमलनालकी कोमलता विचारणीय ही नहीं (जब इनके सदृश कोमल वस्तुओंकी यह दशा है) तो फिर पल्लवोंकी कथाका क्या नाम लेना, अर्थात् वे (विचारे क्या साम्यता करैंगे तात्पर्य यह कि तेरी अनुपम कोमलताकी उपमा मिलना परम दुस्तर है) ॥

स्वेदाम्बुसान्द्रकणशालिकपोलपाली दोलायितश्र-
वणकुंडलवंदनीया । आनंदमंकुरयति स्मरणेन
कापि रम्या दशा मनसि मे मदिरेक्षणायाः ॥ ३ ॥

सुरा समान अरुण नेत्रवाली (भामिनी) की वह रमणीय दशा, जिसमें प्रस्वेद जलके घने कणोंसे (कोमल) कपोल भाग शोभित हो रहा है और दोलायमान (हिलनेवाले) श्रवण कुंडलसे वंदनीय है जो, स्मरण होनेसे (मेरे हृदयमें) आनं-दांकुरका उद्भव करती है । (यह विपरीतरति वर्णन है) ॥

कस्तूरिकातिलकमालि विधाय सायं स्मेरानना
सपदि शीलय सौधमौलिम् ॥ प्रौढिं भजंतु कुमुदा-
नि मुदामुदारामुल्लासयंतु परितो हरितो मुखानि ॥४॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे आलि ! कस्तुरी तिलक धारण करके हास्यमुखी होती हुई संध्याकालमें तू गृहकी गचीपे गमन कर (जिसमें) प्रमोदयुक्त कुमुदगण विकाश पावैं और दिशाओंके आ समंताद्राग उल्लसित (भावार्थ–प्रकाशित) होवैं । (इस प्रकारका व्यापार होना संभव नहीं परंतु यहाँ उसका संबंध वर्णन किया इससे 'संबंधातिशयोक्ति' अलंकार हुआ. 'रूपक' अलंकार भी भासित होता है मुखको चंद्र मान कस्तूरी तिलकसे कलंकित किया और हास्यरूपी चंद्रिकाको प्रकाशित कर चंद्रविकाशी कमलोंको विकाशित और दिशाओंको प्रकाशित करना दरशाया)॥

तन्मंजुमंदहसितं श्वसितानि तानि सा वै कलंक-
विधुरा मधुराननश्रीः ॥ अद्यापि मे हृदयमुन्म-
दयन्ति हंत सायंतनाम्बुजसहोदरलोचनायाः ॥ ५ ॥

संध्या समयमें (फूलने वाले चंद्रविकाशी) कमलके समान नेत्रोंवाली (भामिनी) की वह मंजुल मंद हसनि, वे वचन और वह निष्कलंक मनोहर मुखकी छबि अभी तक मेरे मनको क्षोभित करती है हाय यह बडा दुःख है । (यह विरही नायककी उक्ति है) ॥

प्रातस्तरां प्रणमने विहिते गुरूणामाकर्ण्य वाच-
ममलां भव पुत्रणीति ॥ नेदीयसि प्रियतमे पर-
मप्रमोदपूर्णादरं दयितया दधिरे दृगन्ताः ॥ ६ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

प्रातःकाल गुरुजनोंको प्रणाम करनेमें 'पुत्रवती हो' इस प्रकारके सुंदर वचनोंको सुन, परम प्रमुदित हो बडे आदरसे समीपभागस्थित अपने पतिकी ओर स्त्रीने दृष्टि की । (इस श्लोकमें यह भाव ध्वनित होता है कि उस नायिकाका पति या तो मूर्ख है इससे विलासादिक सुखोंको जानताही नहीं, अथवा जार है इस कारण स्वपत्नीसे प्रीति नहीं करता; अथवा बालक है इससे निज स्त्रीको प्रसन्न करनेमें समर्थ नहीं । 'पुत्रिणी भव' इस आशीर्वाक्यको श्रवणकर नायिकाने पतिकी ओर देखकर यह सूचित किया कि इन शब्दोंकी सार्थकता करो अथवा यदि वैसा करनेको तुम समर्थ नहीं तो आज्ञाही दो कि मैं स्वयं उसका उपाय करूं। इससे यह भाव भी दर्शित होता है कि जो यह आशीर्वाद सत्य होगा तो मेरा पतिव्रत भंग समझना और जो पतिव्रत भंग न होगा तो गुरुजनोंके वाक्य मृषा जानना) ॥

गुरुजनभयमद्विलोकनान्तः समुदयदाकुलभावमुद्वहन्त्यः ॥ दरदलदरविन्दसुंदरे हा हरिणदृशो नयने न विस्मरामि ॥ ७ ॥

गुरुजनोंका भय है जिसमें ऐसे अवलोकनसे उत्पन्न हुए आकुल भावको प्राप्त होनेवाली मृगनयनी (भामिनी) के किंचित् विकसित कमलके समान सुंदर नयनोंका विस्मरण मुझे नहीं होता (अर्थात् मैं सदैव उनका स्मरण करता रहता हूँ, कभी भूलता नहीं) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

बदरामलकाम्रदाडिमानामपहृत्य श्रियमुन्नतो क्रमेण ॥ अधुना हरणे कुचौ यतेते दयिते ते करिशावकुम्भलक्ष्म्याः ॥ ८ ॥

हे कांते ! क्रम क्रमसे ऊंचे उठनेवाले तेरे कुचद्वय, बेर (बदरीफल,) आमला (आमलक धात्रीफल,) आम्र और दाडिम (अनार) की शोभाको हरण करके अब इस कालमें गजशावकके गंडस्थलकी शोभा हरनेका प्रयत्न करते हैं (मुग्धा नायिकाकी उस अवस्थाका वर्णन है जिसमें शरीर कांति दिन प्रति बढती जाती है । इस श्लोकमें कुचोंका उत्तरोत्तर उत्कर्ष वर्णन किया इससे 'सार' अलंकार हुआ) ॥

जम्बीरश्रियमतिलंध्य लीलयैव व्यानम्रीकृतकमनियहेम कुंभौ ॥ नीलाम्भोरुहनयनेऽधुना कुचौ ते स्पर्धेते किल कनकाचलेन सार्धम् ॥ ९ ॥

हे नीलकमल लोचने ! जंबीर नीबूकी शोभाको उल्लंघन करके, निज लीलासे सुन्दर हेमरूपी कुंभों [घटों] को नम्र करने (जीतने) वाले तेरे कुच अब इस समयमें सुमेरु पर्वतके साथ स्पर्धा [ईर्षा] करते हैं (अर्थात् अत्यंत पीन और उन्नत स्थितिको प्राप्त हो रहे हैं--इसमें भी ' सार ' अलंकार है) ॥

कपोलपालीं तव तन्वि मन्ये लावण्यधन्ये दिशमुत्त-

---

१ यह ' माल्यभारा ' छंद है । २ यह ' प्रहर्षिणी ' छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons Dev Prayag. Digitized by eGangotri

राख्याम् ॥ आभाति यस्यां ललितालकायां मनो-
हरा वैश्रवणस्य लक्ष्मीः ॥ १० ॥

हे लावण्यधन्ये, तन्वि (कृशाङ्गि) ! मैं तेरी कपोलपाली-को उत्तर दिशा मानता हूं (क्योंकि) उस ललित अलकों-वाली कपोलपालीमें श्रवण (कुंडलों) की मनोहर श्रीशोभाय-मान होती है और उत्तर दिशा स्थित अलकापुरी नाम नगरी-में वैश्रवण (कुबेर) की मनोहर संपत्ति शोभा पाती है ('ललि-तालकायां' और 'वैश्रवणस्य' के दो दो अर्थ होनेसे 'श्लेष' अलंकार हुआ । कपोलपालीको उत्तर दिशि माननेसे 'उत्प्रेक्षा' अलंकारकी भी संसृष्टि हुई) ॥

नीवीं नियम्य शिथिलामुषसि प्रकाशमालोक्य वारि-
जदृशः शयनं जिहासोः ॥ नैवावरोहति कदापि च
मानसान्मे नाभेः प्रभा सरसिजोदरसोदरायाः ॥११॥

प्रातःकालमें प्रकाश अवलोकन कर शिथिल (ढीली) नीवी (दुकूल ग्रंथि) को नियमित करके शय्याको छोडनेवाली (भामिनी) की, कमलके उदरके समान नाभिकी सौंदर्यता मेरे मनसे कदापि नहीं उतरती ॥

आलीषु केलीरभसेन बाला मुहुर्ममालापमुपा-
लपंती ॥ आरादुपाकर्ण्य गिरं मदियां सौदामि-
नीयां सुषमामयासीत् ॥ १२ ॥

---

१ यह उपजाति है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Devprayag. Digitized by eGangotri

सखियोंके साथ खेलमें निमग्न होनेसे धीरे धीरे मेरे वचनों-को[1] कहनेवाली बाला (नवला स्त्री) दूरसे मेरी वाणीको श्रवण करके सौदामिनी (विद्युल्लता) की शोभाको प्राप्त हुई (जैसे दामिनी चमकके तत्काल लोप हो जाती है वैसेही वह कामिनी भी दृष्टिगोचर होते ही कहीं की कहीं चली गई अर्थात् लज्जावश उस स्थानको तुरंत त्याग स्थानांतरमें प्रवेश करती भई) ॥

मुधैव नक्तं परिकल्प्य गन्तुं मृषैव रोषादुपज-
ल्पतो मे । उदश्रुचंचन्नयना नतांगी गिरं न कां
कामुररीचकार[2] ॥ १२ ॥

रात्रिमें जानेकी वृथा कल्पना करके, मुझ मृषा (झूठ) रोषके प्रकट करनेवालेकी, अश्रुओंसे चंचल नयनोंवाली नतांगी (भामिनी) ने कौन कौन बात अंगीकार नहीं की ? अर्थात् जो कुछ कहा सभी किया । (तात्पर्य—वियोगके दुःखको परम असह्य मान अश्रुपात करती हुई कामिनीने उन बातोंका भी करना स्वीकार किया जिन्हें वह पहिले करनेको सकुचती थी ॥

तदवधि कुशली पुराणशास्त्रस्मृतिशतचारुवि-
चारजो विवेकः ॥ यदवधि न पदं दधाति चित्ते
हरिणकिशोरदृशो दृशोर्विलासः[3] ॥ १४ ॥

---

१ मेरे वचनोंका अनुकरण करनेवाली अर्थात् जैसे मैं भाषण करता था वैसे ही बोलनेवाली । २ ' उपेन्द्रवज्रा ' । ३ यह ' पुष्पिताग्रा ' छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

कुशलता और पुराण, शास्त्र तथा स्मृतिके अनेक सुन्दर विचारोंसे उत्पन्न हुआ विवेक तभीतक है जबतक मृगशावकनयनी (भामिनी) के नेत्र विलास मनमें स्थान (प्रवेश) नहीं करते (अर्थात् कामिनीके नयनबाण लगनेसे शास्त्र कहींके कहीं पडे रहते हैं; उनमें कही गई मर्यादाका कोईभी पालन नहीं करता) ॥

आगतः पतिरितीरितं जनैः शृण्वती चकितमेत्य देहलीम् । कौमुदीव शिशिरीकारिष्यते लोचने मम कदा मृगेक्षणा ॥ १५ ॥

" (तेरा) पति आगया " इस प्रकार सहेलियोंसे कहे गये वचनोंको श्रवण करके सविस्मय देहलीपै चंद्रिकाके समान आई हुई मृगनयनी (भामिनी कब मेरे नेत्रोंको शीतल करेगी ?) ॥

अवधौ दिवसावसानकाले भवनद्वारि विलोचने दधाना ॥ अवलोक्य समागतं तदा मामथ रामा विकसन्मुखी बभूव[2] ॥ १६ ॥

संध्याकाल अवधिकी वेर गृहकी द्वारी (खिडकी) में नयनोंको स्थापन[3] करनेवाली रामा (भामिनी) स्त्री उस समय मुझे आता देख हास्यमुखी हुई ॥

---

१ यह ' रथोद्धता छंद है । २ माल्यभारा ' छन्द । ३ खिडकीसे झांकनेवाली ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons- Dev Prayag. Digitized by eGangotri

वक्षोजाग्रं पाणिनामृष्य दूरं यातस्य द्रागाननाब्जं प्रियस्य ॥ शोणाग्राभ्यां भामिनीलोचनाभ्यां जोषं जोषं जोषमेवावतस्थे ॥ १७ ॥

कुचाग्रभागको हस्तसे मर्दन करके तुरंत दूर चले गये प्रियतमके मुखकमलका (अपने अरुण नेत्रोंसे सेवन करती हुई) रोषपूरित (भामिनी चुपचाप स्थित रही अर्थात् नेत्र लाल करके उसके मुखकी ओर देखती रह गई कुछ कर न सकी) ॥

गुरुभिः परिवेष्टितापि गंडस्थलकंडूयनचारुकैतवेन ॥ दरदर्शितहेमबाहुनाला मयि बाला नयनांचलं चकार ॥ १८ ॥

गुरुजनोंके बीचमें बैठी हुई बाला (भामिनी) ने गंडस्थल (कपोल भाग) खुजलानेके मिससे हेम सदृश भुजारूपी नालका किंचित् दर्शन देकर मुझे अवलोकन किया (अधिक स्नेहके कारण गुरुजनोंके मध्यसे भी किसी मिससे प्रियतमको देखा यह भाव है) ॥

गुरुमध्यगता मया नतांगी निहता नीरजकोरकेण मंदम् ॥ दरकुंडलतांडवं नतभ्रूलतिकं मामवलोक्य घूर्णितासीत् ॥ १९ ॥

गुरुजनोंके बीचमें बैठी हुई और कमलकलीसे धीरे मेरी मारी हुई नतांगी [नत हैं अंग जिसके ऐसी] मुझे देख कर्ण

१ यह 'शालिनी' छन्द है । २ 'मालयभारा' छन्द है । ३ 'मालयभारा'।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

कुंडलोंको किंचित् नचाती और भ्रुकुटि लताको नत (तात्पर्य-टेढी, वंक) करती हुई घूरने लगी ॥

विनये नयनारुणप्रसाराः प्रणतौ हंत निरन्तराश्रुधाराः ॥ अपि जीवितसंशयः प्रयाणे न हि जाने हरिणाक्षि केन तुष्ये ॥ २० ॥

विनय करनेसे लोचन लाल हो जाते हैं, प्रणत किया [पैर पडने अथवा हाथ जोडने] में निरंतर अश्रुधारा चलती है, (विदेश) गमन (की बात चलाने) में प्राण (रखने) की भी शंका होती है, (अतएव मैं) नहीं जानता कि (यह) मृगनयनी किस बातसे संतुष्ट होगी ? (हाय ! यह बडा खेद है) ॥

अकरुणमृषाभाषासिंधो विमुंच ममांचलं तव परिचितः स्नेहः सम्यङ्मयेत्यभिधायिनीम् ॥ अविरलगलद्बाष्पां तन्वीं निरस्तविभूषणां क इह भवतीं भद्रे निद्रे विना विनिवेदयेत् ॥ २१ ॥

हे निर्दय ! असत्यभाषण समुद्र ! मेरा अंचल छोड, मैंने तेरा स्नेह भली भांति जान लिया ऐसा बोलने वाली (और) संतत अश्रुधारा बरसानेवाली वस्त्रविहीना कृशांगी (भामिनी)को इस देश अथवा इस स्थलमें, हे कल्याणकारिणि निद्रे ! तेरे विना और कौन मेरे स्वाधीन करेगा ? (प्रवासी विरही नायककी उक्ति है; रात्रि समय स्वप्नमें निज प्रियाको देख निद्राकी प्रशंसा

---

१ 'माल्यभारा' । २ 'हरिणी' छंद है ,

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

करता है और अपने ऊपर उसके महान् उपकार मानता है। सत्य है वियोगियोंको ऐसी दशा परम सुखकारिणी होती है) ॥

तीरे तरुण्या वदनं सहासं नीरे सरोजं च मिलद्विकासम्॥ आलोक्य धावत्युभयत्र मुग्धा मरंदलुब्धालिकिशोरमाला ॥ २२ ॥

(सरोवरके) तीरमें तरुणी (भामिनी) के सहास्य मुख और जलमें विकसित कमलको अवलोकन कर मूर्ख मकरंदलोभी मधुपकिशोरपंक्ति दोनों ओर धावन करती है (भ्रमर की प्रीत कमलसे है परन्तु स्त्री मुखको देख उन्हें कमलहीका संदेह हुआ इससे इस श्लोकमें 'संदेह' अलंकार जानना) ॥

वीक्ष्य[२] वक्षसि विपक्षकामिनीहारलक्ष्म दयितस्य भामिनी। अंसदेश[३]विनिवेशितां क्षणादाचकर्ष निजबाहुवल्लरीम् ॥ २३ ॥

प्रीतमके हृदयस्थलपै सपत्नीके हारका चिह्न देख कंठदेशमें स्थापन की गई निज बाहुरूपीवल्लरी भामिनीने तत्काल खींचली (अपना पति अन्य स्त्रीसे स्नेह रखता है यह जान रोष प्रकट किया । इसमें 'खंडिता' नायिका है) ॥

दरानमत्कंधरबंधमीषन्निमीलितस्निग्धविलोचनाब्जम् ॥ अनल्पनिश्वासभरालसांगं स्मरामि संगं चिरमंगनायाः[४] ॥ २४ ॥

---

१ 'उपजाति' छंद । २ 'रथोद्धता' छंद है । ३ कंधदेश । ४ 'उपेन्द्रवज्रा'

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

किंचित् नम्र कंधरबन्धवाला, कुछ मुँदे हुये सुंदर लोचनरूपी कमलवाला, अधिकश्वासभरसे सालस अंगवाला, अंगना (भामिनी) का संग (संयोग) मैं सदैव स्मरण करता हूं (रतिप्रसंग वर्णन है) ॥

रोषावेशान्निर्गतं यामयुग्मादेत्य द्वारं कांचिदाख्यां गृणन्तम् ॥ मामाज्ञायैवाययौ कातराक्षी मंदं मंदं मंदिरादिंदिरेव[2] ॥ २८ ॥

रोषावेशके कारण (गृह) से निकल जानेवाले (और) अर्धरात्रिमें द्वारपै आय (अपने आपहीसे) कुछ वार्तालाप करनेवाले मुझको जान मंदिर (घर) से मंद मंद इंदिरा (लक्ष्मी) के समान भयभीत लोचना (भामिनी) आई (इसमें 'कलहांतरिता' नायिका है) ॥

हृदये कृतशैवलानुषंगा मुहुरंगानि यतस्ततः क्षिपंती ॥ प्रियनामपरे मुखे सखीनामतिदीनामियमादधाति दृष्टिम्[3] ॥ २९ ॥

हृदयमें शैवल (सिवार) का अनुषंग (संपर्क) करनेवाली (अर्थात् कलुषित हृदयवाली) और अंगोंको बार बार कभी इधर कभी उधर डालनेवाली यह अति दीना (नायिका) प्रियतमके नामको उच्चारण करनेवाली सखियोंके मुखको अवलोकन करती है ॥

---

१ कंधा २ यह 'शालिनी' छन्द है। ३ 'मालयभारा'।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

इत एव निजालयं गताया वनिताया गुरुभिः समावृतायाः ॥ परिवर्त्तितकन्धरं नतभ्रु स्मयमानं वदनांबुजं स्मरांमि ॥ २७ ॥

यहांसे निज गेहको गमन करनेवाली, गुरुजनोंके मध्यस्थित भामिनीका, फिरी हुई ग्रीवा और नम्र नम्र भृकुटीवाला हास्ययुक्त मुखकमल, मैं स्मरण करता हूं ॥

कथय कथमिवाशा जायतां जीविते मे मलयभुजगवान्ता वांति वाताः कृतान्ताः ॥ अयमपि खलु गुंजन्मंजु माकंदमौलौ चुलुकयति मदीयां चेतनां चंचरीकैः ॥ २८ ॥

कहिये[3] जीवनकी क्या आशा है ? (उधर) मलयाचलसे सर्पोंकी उगलीहुई कालके समान वायु वहती है (इधर) आम्रपै मंजु गुंजार करनेवाले मधुकर मेरे चित्तको हरण करते हैं ॥

निरुध्य यान्तीं तरसा कपोतीं कूजत्कपोतस्य पुरो दधाने । मयि स्मितार्द्रं वदनारविंदं सा मंदमंदं नमयांबभूव[4] ॥ २९ ॥

हठसे [अथवा वेगसे] जानेवाली (अर्थात् प्रसंगकी इच्छा न रखनेवाली) कपोतीको रोककर शब्द करनेवाले (रत्युत्सुक) कपोतके सन्मुख लानेवाले मुझे देख प्रियतमाने मुसुकुराते हुए वदनकमलको लज्जासे धीरे धीरे नीचा किया ॥

१ मालभारा । २ मालिनी । ३ विरहीकी उक्ति है । ४ 'उपजाति'।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

तिमिरं हरंति हरितां पुरः स्थिता तिरयंति ताप-
मथ तापशालिनाम्॥ वदनत्विषस्तव चकोरलोचने
परिमुद्रयन्ति सरसीरुहश्रियः ॥ ३० ॥

हे चकोरके समान नयनोंवाली (भामिनी) ! तेरी वदन-कांति, दिशाओंमें व्याप्त हुए अंधकारको नाश करती है, संतप्त मनुष्योंकी शोभा को आच्छादित करती है (तेरा मुख चंद्र-माही है यह भाव है) ॥

कुचकलशयुगांतर्मामकीनं नखांकं सपुलकतनु मंदं
मंदमालोकमाना॥ विनिहितवदनं मां वीक्ष्य बाला
गवाक्षे चकिततनु नतांगी सद्म सद्यो विवेश ॥ ३१॥

(सुवर्ण) कलश [घट] के समान दोनों कुचोंके मध्यमें मेरे कियेहुए नखोंको पुलकित होती धीरेधीरे अवलोकन करने-वाली चकितगात्री नतांगी (नम्र है अंग जिसका ऐसी) बालाने खिडकीमें मुख रखेहुए मुझे देख शीघ्रतासे घरमें प्रवेश किया ॥

विधाय सा मद्वदनानुकूलं कपोलमूलं हृदये
शयाना ॥ तन्वी तदानीमतुलां बलारेः साम्राज्य-
लक्ष्मीमधरीचकार ॥ ३२ ॥

हृदयमें शयन करनेवाली कृशांगी (भामिनी) ने मेरे मुखके अनुकूल (अर्थात् जैसा चाहिये वैसा) मुखके ऊपर कपोल-मूल [चिबुक] को स्थापन कर उस समयमें देवेन्द्रकी अतुल

१ यह 'मंजुभाषिणी छंद है । २ 'उपजाति'।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

राज्य संपत्तिके सुखको (भी) तिरस्कार किया (सुरेशवैभव-संजात सुखसे इस सुखको अधिक माना यह भाव) ॥

मुहुरर्थितयाद्य निद्रया मे बत यामे चरमे निवेदितायाः ॥ चिबुकं सुदृशः स्पृशामि यावन्मयि तावन्मिहिरोऽपि निर्दयोऽभूत् ॥ ३३ ॥

वारंवार प्रार्थना की गई निद्रासे आज चतुर्थ प्रहरमें सनिवेदन लाई गई सुलोचना (भामिनी) की चिबुकको जब तक मैं स्पर्श करूं तब तक (दैव तो हई है पै) सूर्यभी मेरे हेत निरदई हुआ (विरही नायककी उक्ति है, तीन प्रहर वियोगव्यथामें विताय चतुर्थ प्रहरमें निज प्रियतमाको स्वप्नमें देख ज्योंही चिबुक पै हाथ लेगया त्योंही सूर्योदय हुआ अतएव अग्रिमकार्य असमाप्तही रहा) ॥

श्रुतिशतमपि भूयः शीलितं भारतं वा विरचयति तथा नो हंत संतापशांतिम् । अपि सपदि यथायं केलिविश्रांतकांतावदनकमलवल्गत्कांतिसान्द्रो नकारः ॥ ३४ ॥

केलिसे श्रमित कांताके वदनकमलसे निकला हुआ यह रसमय 'नकार' [न, न कहना] शीघ्रही संतापको जैसा शांत करता है वैसा अनेक बार सैकडों श्रुतियों तथा भारत (इत्यादि) पुराणोंका परिशीलन नहीं । 'न, न' कहना तो इतना सुखकर

१ 'माल्यभारा' छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

है यदि वह 'हूँ' कहे तो न जानें कितना सुख होगा ? मूलमें 'अपि' शब्दके प्रयोगसे यह भाव ध्वनित होता है) ॥

लवली तव लीलया कपोले कवलीकुर्वति कोमलत्विषा । परिपांडुरपुंडरीकखंडे परिपेतुः परितो महाधयः ॥ ३५ ॥

(हे भामिनी !) तेरे कपोलकी लीलायुक्त कोमलकांतिने लवली नामक लताकी शोभाको हरण कर अत्यंत शुभ्र कमलसमूहको सर्व ओरसे महान् भय उत्पन्न किया है (लवलीकी शोभाको ग्रास करके अब हमारी भी वही दशा करेगी इससे कमल भयभीत हुए यह भाव है) ॥

यौवनोद्गमनितांतशंकिताः शीलशौर्यबलकांतिलोभिताः ॥ संकुचंति विकसंति राघवे जानकीनयननीरजश्रियः ॥ ३६ ॥

युवावस्थाके उपगमसे अत्यंत सशंक, शील पराक्रम, (बाहु) बल और (शरीर) कांतिकी लोभी, जानकीके कमलनयनोंकी शोभा, राघवके विषयमें सकुची और आनंदित भी हुई (तरुण होनेसे लज्जित हुई परंतु रामचन्द्रके बल, शील, सुंदरता इत्यादिकके कारण प्रसन्न हुई यह भाव है) ॥

---

१ इसे एक प्रकारकी 'उपजाति छंद कहना चाहिये इसमें 'वैतालीय' और 'औपच्छन्दसिक' का संकर है । २ लवली एक प्रकारकी लता है इसके और कपोलके रंगकी समता दी जाती है । ३ 'रथोद्धता छंद'

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अधिरोप्य हरस्य हंत चापं परितापं प्रशमय्य बांधवानाम् ॥ परिणेष्यति वा न वा युवायं निरपायं मिथिलाधिनाथपुत्रीम् ॥ ३७ ॥

यह युवा (रामचंद्र,) शंकरके चापको चढाय बंधुजनोंके परितापको शमनकर, मिथिलापतिपुत्री (जानकी) का निर्विघ्न पाणिग्रहण करैगा अथवा नहीं ! यह (जनकपुरवासियोंकी उक्ति है) ॥

भुजपञ्जरे गृहीता नवपरिणीता वरेण रहसि वधूः ॥ तत्कालजालपतिता बालकुरंगीव वेपते नितराम्॥ ३८ ॥

एकांतस्थलमें पतिसे आलिंगनकी गई नवविवाहिता (नवोढा) नायिका, तत्काल जालमें फंसी हुई बालमृगीके समान अत्यंत कंपित होती है) ॥

उपनिषदः परिपीता गीतापि च हंत मतिपथं नीता ॥ तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद्बहिर्याति ॥ ३९ ॥

उपनिषदोंको पान (अर्थात् श्रवण) किया और भगवद्गीताको मतिके मार्गको पहुंचाया अर्थात् उसका भी भली भाँति परिशीलन किया; परंतु हाय ! इतना करनेपरभी यह चंद्रवदनी (भामिनी) मेरे मनरूपी गेहसे बाहर नहीं जाती । (गीतादिकसे मनुष्यको ज्ञान उत्पन्न होता है और विषय वासना छूट-

१ 'माल्यभारा'। [torn fragment:] तवारोहेत्[...]

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

जाती है परन्तु मेरा अनुराग अधिकाधिक बढताही जाता है यह भाव है) ॥

अकरुणहृदय प्रियतम मुंचामि त्वामितः परं नाहम् ॥ इत्यालपति कराम्बुजमादायाली जनस्य विकला सा ॥ ४० ॥

" हे निर्दय प्रियतम ! अब आजसे मैं तुम्हें न छोडूँगी (अर्थात् फिर विदेश न गमन करने दूंगी) " इस प्रकार वह व्याकुलनायिका सखीके करकमलको पकडकर कहती है (नायिकाका संदेश लेकर विदेशवासी नायकके प्रति यह दूतीका वचन है विरहसे नायिकाको उन्माद उत्पन्न हुआ है इससे वह सखियोंको ही पति समझ इस प्रकारकी बातें कहती है यह भाव-नायिकाकी ऐसी दशा वर्णन करके शीघ्रही उसे मिलिं यह सूचित किया) ॥

लोभाद्वराटिकानां विक्रेतुं तक्रमविरतमटन्त्या ॥
लब्धो गोपकिशोर्या मध्येरथ्यं महेन्द्रनीलमणिः॥ ४१ ॥

कौडीके लोभसे मही (मट्ठा) बेंचनेके लिये निरंतर फिरने वाली गोपकिशोरीने मार्गमें परम श्रेष्ठ नीलमणि पाई ! (इसमें एक तो यह भाव निकलता है कि तक्र बेंचनेवाली गोपसु राधिकाको श्रीकृष्ण अनायास मिले; दूसरा यह कि; अ धनके हेत महान् परिश्रम करनेसे अप्राप्य वस्तु भी प्राप्त हो

और ' औपच्छ
इसके और कपे

१ ' प्रोषितपतिका ' नायिका ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

है । थोडे पदार्थकी इच्छा करनेमें बहुत लाभ होना, 'प्रहर्षण' अलंकारका लक्षण है) ॥

रूपारुचिं निरसितुं रसयन्त्या हरिमुखस्य लावण्यम् ॥ सुदृशः शिवशिव सकले जाता सकलेवरे जगत्यरुचिः ॥ ४२ ॥

(जैसा मेरा रूप रुचिर है वैसा और किसीका नहीं इस प्रकारके गर्वसे जगतमें मनुष्यजातिकी सौंदर्यतासे घृणा उत्पन्न हुई है जिसे उस), स्वरूपकी अरुचिको दूर करनेके लिये श्रीकृष्णके मुखकी लावण्यका स्वाद लेनेवाली सुलोचनीको शिव शिव अपने शरीरके सहित संपूर्ण जगत्में अरुचि उत्पन्न हुई अर्थात् कृष्ण मुझसे भी विशेष सुन्दर है यह जान वैराग्यका अंकुर जमा ॥

प्राणापहरणेनासि तुल्यो हालाहलेन मे ॥
शशांक केन मुग्धेन सुधांशुरिति भाषितः ॥ ४३ ॥

हे चंद्रमा ! मेरे प्राण लेनेमें तू हलाहल [विष] के समान है, (भला फिर तुझे) सुधांशु (अमृत है किरणमें जिसके ऐसा) किस मूर्खने कहा अर्थात् नाम दिया (यह विरहीकी उक्ति है) ॥

किं जल्पसि मुग्धतया हंत ममांगं सुवर्णवर्णमिति ॥
तप्याति पतति हुताशे तदा हताशे तुलां तवारोहेत् ४४

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons. Dev Prayag. Digitized by eGangotri

मेरे अंगका वर्ण सुवर्णके समान है इस प्रकार मूढतासे सहर्ष तू क्या कहती है ? हे हताशे ! सुवर्ण जब अग्निमें (तपानेके हेतु) डाला जाता है तब तेरी तुलना [उपमा] को प्राप्त होता है । (तेरे अंगका रंग सुवर्णसे श्रेष्ठ है क्योंकि जबतक सुवर्ण अग्निकी कठोर आंचें नहीं सहता तबतक तेरी समताको नहीं पाता यह भाव । (यहां सुवर्ण जो उपमान उसका नायिकाका अंग जो उपमेय उससे अनादर होनेसे 'प्रतीप' अलंकार हुआ) ॥

औत्सुक्यात्परिमिलतां त्रपया संकोचमंचतां च मुहुः ।
नवसंगमयोर्यूनोर्नयनानामुत्सवो जयति ॥ ४८ ॥

उत्सुकता संयुक्त और वारंवार लज्जासे संकोचको प्राप्त, नूतन प्रसंग समयमें दंपतीके नेत्रोंका उत्सव जय पावै ॥

गरिमाणमर्पयित्वा लघिमानं कुचतटात्कुरंगदृशाम् ॥
स्वीकुर्वते नमस्ते यूनां धैर्याय निर्विवेकाय ॥ ४६ ॥

गुरुताको देकर मृगनयनीके कुचप्रांतसे लघुत्वको स्वीकार करनेवाले तरुणपुरुषोंके अविवेकी धैर्यको नमस्कार है । (इसमें 'परिवृत्ति' अलंकार है, जहां बहुत देनेसे भी कम प्राप्ति है वहां यह अलंकार होता है) ॥

न्यंचति वयसि प्रथमे समुदंचाति तरुणिमनि तदा सुदृशः ॥ दधाति स्म मधुरिमाणं वाचो गतयश्च विभ्रमाश्च भृशम् ॥ ४७ ॥

---

१ नाशहुई है आशा जिसकी ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

सुलोचनी (भामिनी) की बाल्यावस्थाके गमन और तारुण्यताके आगमन समयमें वाणी, गति और विलास परम माधुर्य्यताको प्राप्त होते हैं ॥

निस्सीमशोभासौभाग्यं नतांग्या नयनद्वयम् ॥
अन्यो यालोकनानंदविरहादिव चंचलम् ॥ ४८ ॥

जिसकी शोभाके सौभाग्यकी सीमा ही नहीं ऐसे, नतगात्री (नायिका) के युगलनयन, मानों एक दूसरेको न देख सकनेके कारण चंचल हो रहे हैं (नयनोंके चंचल होनेका कारण परस्परावलोकनका विरह कहा इससे 'उत्प्रेक्षा' अलंकार हुआ)॥

गुरुमध्ये हरिणाक्षी मार्तिकशकलैर्निहंतुकामंमाम् ॥
रदयंत्रितरसनाग्रं तरलितनयनं निवारयांचक्रे ॥ ४९ ॥

मृत्तिकाके ढेलेसे मारनेकी इच्छा करनेवाले मुझे, गुरुजनोंके मध्यमें मृगनयनीने जिह्वाग्रको दातोंसे दबाय और आंखोंको तरलित करके, निवारण किया ।

नयनांचलावमर्शं या न कदाचित्पुरा सेहे ॥
आलिंगितापि जोषं तस्थौ सा गंतुकेन दयितेन॥५०॥

जिस नायिकाने पहिले नेत्रकटाक्षको भी कभी न सहन किया वह विदेश जानेकी इच्छा रखनेवाले प्रियतमसे आलिंगन कीगई भी संतुष्ट स्थित रही ('प्रवस्यत्पतिका' नायिका है)॥

मानपराग्वदनापि प्रिया शयानेव दयितकरकमले ॥
उद्वेल्लद्भुजमलसग्रीवाबंधं कपोलमाधत्ते ॥ ५१ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dey Prayag. Digitized by eGangotri

मानसे पराङ्मुखहुई नायिका निद्राके मिषसे प्रियतमके कर-कमलमें, हस्तको ऊंचा और ग्रीवाबंधको शिथिल करती हुई कपोलको स्थापन करती है ।

लोचनफुल्लांभोजद्वयलोभांदोलितैकमनाः शुभ्रे ॥
कस्तूरीतिलकमिषादयमालिकेऽलिस्तवोल्लसति ॥९२॥

हे शुभांगि ! लोचनरूपी प्रफुल्लित युगल अंभोजका लोभी चंचल चित्तवाला भ्रमर, कस्तूरीतिलकके मिषसे; तेरे ललाटमें शोभायमान है (कस्तूरीतिलकके यथार्थ गुणको गोपन कर उसको भ्रमर माननेसे ' अपह्नुति ' अलंकार हुआ) ॥

अधिरजनि प्रियसविधे कथमपि संवेशिता बलाद्गुरुभिः।
किं भवितेति सशंकं पंकजनयना परामृशति ॥ ९३॥

रात्रि समय बलसे प्रियतमके समीप गुरुजनोंसे जैसे तैसे प्रवेश की गई कमलनयनी ' क्या होगा ' इस प्रकार सशंक होकर (मनमें) विचारती है (' नवोढा ' नायिका है) ॥

चिंतामीलितमानसो मनसिजः सख्यो विहीनप्रभाः
प्राणेशः प्रणयाकुलः पुनरसावास्तांसमस्ताकथा॥
एतत्त्वां विनिवेदयामि मम चेदुक्तिं हितां मन्यसे
मुग्धे मा कुरु मानमाननमिदं राकापतिर्जेष्यति॥९४॥

हे मुग्धे ! (मान करनेसे) मनसिज म्लान हो जावेगा सखियां तेजहीन होजावेंगी, और यह (तेरा) प्राणपति प्रेमा-कुल हो जावैगा, (इस कारणसे) इन बातोंको रहने दे; तेरे

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

प्रति निवेदन किए गए मेरे इस हितोपदेशको मान, मान न कर (क्योंकि ऐसी शिक्षाको न सुननेसे तेरे) मुखको चंद्रमा जीत लेवेगा । (नायकसे न मिलनेसे तुझे विरह वेदना सहनी पडेगी और उस समयमें चंद्रमा तुझे दुःखदाई होगा अथवा तेरा आनन अभी निष्कलंक है परंतु उदासीनताके कारण कलंकित हो जावेगा और तब चंद्रकी सादृश्यको प्राप्त होवेगा यह भाव है)॥

अलंकर्तुं कर्णौ भृशमनुभवंत्या नवरुजं ससी-
त्कारं तिर्यग्वालितवदनाया मृगदृशः ॥ कराब्ज-
व्यापारानतिसुकृतसारान् रसयतो जनुः सर्वं
श्लाघ्यं जयति ललितोत्तंस भवतः ॥ ९९ ॥

हे मनोहर कर्णकुंडल ! (तुझे) श्रवणमें धारण करनेके समय सीत्कार [सिसकना] करते हुए नूतनोत्पन्न व्याधिको भले प्रकार अनुभव, (तथा) मुखको तिर्यक्[1] करनेवाली सुलो-चनी (नायिका) के महत्सुकृती करकमलके व्यापारोंको तुझ स्वाद लेनेवालेका जन्म प्रशंसनीय है । (कर्णछेदनमें नायिका जो जो व्यापार करती है सो सो ओष्ठ दंशन समयमें भी करती है इससे प्रस्तुत कर्णकुंडल वृत्तांत अप्रस्तुत अधरखंड करनेवाले पुरुषके वृत्तांतमें मिलनेसे 'समासोक्ति' अलंकार हुआ) ॥

आयातैव निशा निशापतिकरैः कीर्णं दिशामंतरं
भामिन्यो भवनेषु भूषणगणैरंगान्यलंकुर्वते ॥ मुग्धे

---

१ वक्र--टेढा ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

मानमपाकरोषि न मनागद्यापि रोषेण ते हा हा
बालमृणालतोऽप्यतितरां तन्वी तनुस्ताम्यति ॥९६॥

हे मुग्धे ! रात्रि आई, निशाकरकी किरणें दिशाओंमें फैल गईं, स्त्रियां (अपने अपने) घरोंमें आभूषणोंसे अंगोको अलंकृत करनेलगीं ! (ऐसे समयमें जो) अब भी तू मानको कुछ कम न करेगी तो रोषसे हाय ! हाय ! यह तेरा बाल मृणालसे भी अतिशय कृश शरीर संतप्त हो जावेगा ॥

वाचो मांगलिकीः प्रयाणसमये जल्पत्यनल्पं जने
केलीमंदिरमारुतायनमुखे विन्यस्तवक्राम्बुजा ॥
निःश्वासग्लपिताधरं परिपतद्बाष्पार्द्रवक्षोरुहा बाला
लोलविलोचना शिव शिव प्राणेशमालोकते ॥ ९७ ॥

(जिस समय) मनुष्य अनेक प्रकारके मंगलकारक शब्द उच्चारण कर रहे हैं उस (प्रियतमके विदेश) गमन करनेकी वेला केलिमंदिरके झरोखेमें कमलरूपी मुखको स्थापन करनेवाली, गिरते हुए अश्रुवोंसे भीगे हुए कुचोंवाली, चंचल नयनी बाला श्वासोच्छ्वाससे होठोंको कंपित करती हुई शिव, शिव, प्राणपतिको अवलोकन करती है। (यह ' प्रवस्यत्पतिका' नायिका है) ॥

यदवधि दयितो विलोचनाभ्यां सहचरि दैववशेन दूरतोऽभूत् ॥ तदवधि शिथिलीकृतो मदीयैरथ करणैः प्रणयो निजक्रियासु ॥ ९८ ॥

---

१ 'पुष्पिताग्रा' छंद।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे सखी ! ज्योंही प्रियतम दैवयोगात् नयनोंसे दूर हुआ त्योंही प्रेमवशात् मेरी इन्द्रियां अपनी २ क्रियामें शिथिल अर्थात् जड हुईं । नयनोंने देखना, श्रवणोंने सुनना, हाथोंने स्पर्श करना त्यागा यह भाव । ('प्रवस्यत्पतिका' नायिका है) ॥

निखिलां रजनीं प्रियेण दूरादुपयातेन विबोधिता कथाभिः ॥ अधिकं न हि पश्यामि वक्तुं सखि मा जल्प तवायसी रसज्ञा ॥ ५९ ॥

दूर देशसे आएहुए प्रियतमके सारी रात्रि वार्तालाप करनेसे मुझ जगी हुईको अब अधिक भाषण करनेकी शक्ति नहीं, इससे हे सखि ! तू (वृथा) मत जल्पना करै, तेरी रसना (जिह्वा) तो लोहकी है ('आगतपतिका' नायिका है)

निपतद्बाष्पसंरोधमुक्तचांचल्यतारकम् ॥ कदा नयननीलाब्जमालोकेय मृगीदृशः ॥ ६० ॥

गिरतेहुए अश्रुओंके रोधसे चंचलताहीन तारोंवाले मृगनयनीके नयनरूपी नीलकमल मैं[2] कब अवलोकन करूंगा ॥

यदि लक्ष्मण सा मृगेक्षणा न मदीक्षासरणिं समेष्यति ॥ अमुना जडजीवितेन मे जगता वा विफलेन किं फलम्[3] ॥ ६१ ॥

हे लक्ष्मण ! यदि वह कुरंगनयनी (सीता) मेरे दृष्टिपथको न प्राप्त होगी तो मेरे इस जडजीवन तथा निष्फल जगतसे क्या फल है ? (लक्ष्मणके प्रति यह रामचंद्रका वचन है) ॥

---

१ 'माल्यभारा' छंद । २ 'प्रोषित' नायक । ३ 'वैतालीय' छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

भवनं करुणावती विशन्ती गमनाज्ञालवलाभलाल-
सेषु ॥ तरुणेषु विलोचनाब्जमालामथ बाला पथि
पातयांबभूव ॥ ६२ ॥

गृहमें प्रवेश करनेवाली करुणावती बालाने मार्गमें, गमनार्थ आज्ञारूपी लाभके लोभी युवा पुरुषोंके ऊपर नेत्ररूपी कमलमालाको डाला अर्थात् उनकी ओर अवलोकन किया (बाहरसे घर आनेवाली नायिकाने अपने अनुगामी पुरुषोंपै दया करके अवलोकन मात्रसे उन्हैं लौटनेकी आज्ञा दी यह भाव—इसमें 'कुलटा' नायिका है) ॥

पापं हंत मया हतेन विहितं सीतापि यद्यापिता सा
मामिंदुमुखी विना बत वने किं जीवितं धास्यति॥
आलोकेय कथं मुखं सुकृतिनां किं ते वदिष्यंति
मां राज्यं यातु रसातलं पुनरिदं न प्राणितुं कामये ६३

मुझ हतभाग्यने महत्पाप किया जो सीताको (वन में) भेजा; हाय ! वह इन्दुमुखी विना मेरे काननमें किस प्रकार जीवन धारण करैगी ? मैं महाजनोंका मुख कैसे देखूंगा (और) वे मुझे क्या कहेंगे ? (अब इस समयमें) राज्य (चाहै) पातालको जाय (परंतु शरीरको) सप्राण रखना उचित नहीं ! (इसमें, शोक, विषाद, शंका इत्यादिककी संसृष्टिसे विशेष चमत्कार भासित होता है) ॥

---

१ 'माल्यभारा'।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

उषसि प्रतिपक्षकामिनीसदनादंतिकमंचति प्रिये ॥
सुदृशी नयनाब्जकोणयोरुदियाय त्वरयाऽरुण-
द्युतिः ॥ ६४ ॥

प्रातःकाल सपत्नीके घरसे आये हुये प्रियतमको स्वसन्निध (देख) सुनैनी (भामिनी) के नयनरूपी कमलोंके कोण शीघ्रही अरुणताको प्राप्त हुए (रोषसे लाल नेत्र हुये यह भाव इसमें 'खंडिता' नायिका है) ॥

क्षमापणैकपदयोः पदयोः पतति प्रिये ॥
शेमुः सरोजनयनानयनारुणकांतयः ॥ ६५ ॥

क्षमापनके स्थान चरणोंमें प्रियतमके गिरनेसे कमल नयनी (नायिका) के नयनोंकी अरुणता शांत हुई (रोष गया यह भाव है) ॥

निर्वासयंती धृतिमंगनानां शोभां हरेरेणदृशो धयं-
त्याः ॥ चिरापराधस्मृतिमांसलोऽपि रोषः क्षण-
प्राघुणिको बभूव[2] ॥ ६६ ॥

स्त्रियोंके धैर्यको दूर करनेवाली जो सिंहकी शोभा उसको धारण करनेवाली कुरंगनयनी (नायिका) का, चिरकाल अपराधके स्मरण होनेसे (उत्पन्न हुआ) महान् रोष शीघ्रही

---

१ 'वैतालीय' छन्द । २ 'उपजाति' अर्थात् इन्द्रवज्रा और उपे-न्द्रवज्राका संकर है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

नष्ट हुआ (नायकके विनीत वचनोंको सुन और उसे निज चरण पलोटते देख नायिकाका मान शांत हुआ यह भाव है) ॥

राज्ञो मत्प्रतिकूलान्मे महद्भयमुपस्थितम् ॥
बाले वारय पांथस्य वासदानविधानतः ॥ ६७ ॥

हे बाले ! राजाके प्रतिकूल होनेके कारण मुझ पथिकके उपस्थित होनेवाले महान् भयको, (अपने) गृहमें वासस्थानका दान देकर, निवारण कर ('राज' शब्द द्व्यर्थिक है) क्योंकि 'राज' चंद्रमाको भी कहते हैं. 'चन्द्र' विरहीजनोंको दुःखद होता है (इससे इस श्लोकमें यह भाव निकलता है कि अपने घरमें मुझे स्थान दे मेरी कामव्यथाको शांत कर; कारण, चंद्रमा सहन होनेकी यही एकमात्र औषधि है) ॥

मलयानिलमनलीयति मणिभवने काननीयति क्षणतः ॥
विरहेण विकलहृदया निर्जलमीनायते महिला ॥ ६८ ॥

विरह (वेदना) से विकलहृदयवाली कामिनी, मलयाचल संबंधिनी पवनको अनल और मणिमय भवनको वन मान जल-विहीन मीनके समान आचरण करती है ॥

कालागुरुद्रवं सा हालाहलवद्विजानती नितराम् ॥
अपि नीलोत्पलमालां बाला व्यालावलिं किलामनुत ६९

वह (विरहव्याकुला) बाला, कालागरु चंदनके रसको निपट हालाहल [विष) जान, नीलकमलकी मालाको भी ठीक

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

ठीक व्याल (सर्प) पंक्ति समझती है। (कालागरुका पंक और विष, तथा नीलोत्पलमाला और व्याल एकही रंगके होते हैं इससे सहजही भ्रमोत्पादक है, फिर वियोगजनित दुःखसे संतप्तजनोंको विपरीत क्यों न दिखाई देंगे? उनको तो इन शांतिकारक पदार्थोंसे अधिकाधिक कष्ट होता है) ॥

विधिवंचितया मया न यातं सखि संकेतनिकेतनं
प्रियस्य ॥ अधुना बत किं विधातुकामो मयि
कामो नृपतिः पुनर्न जाने ॥ ७० ॥

हे सखि ! मैं हतभागिनी प्रियतमके संकेतस्थानको न गई, हाय ! (इस कारण) मदन महीप न जानें मुझे क्या करेंगे (मनोजराजके आज्ञानुसार मैं प्रियकी सहेटको न गई अत एव वचन उल्लंघन करनेके अपराधमें मुझको महान् दंड मिलैगा यह भाव है)॥

विरहेण विकलहृदया विलपंती दयित दयितेति ॥
आगतमपि तं सविधे परिचयहीनेव वीक्षते बाला ७१॥

वियोगसे विकल हृदयवाली, ' हे प्रिय' ' हे प्रिय ' इस प्रकार विलाप करनेवाली, बाला स्वसंनिकट भागमें भी आये हुए नायकको अपरिचित (अजान) की भाँति देखती है (अधिक विरहव्यथाके कारण मोह उत्पन्न होनेसे स्मरण शक्ति जाती रही, इस हेतु यद्यपि वह प्रियतमके नामसे बारम्बार विलाप करती थी तथापि पास आनेसे भी वह उसे पहिचाननेको समर्थ नहीं हुई)॥

---

१ 'माल्यभारा' छन्द है।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

दारिद्र्यं भजते कलानिधिरयं राकाऽधुना म्लायति
स्वैरं कैरवकाननेषु परितो मालिन्यमुन्मीलति ॥
द्योतंते हरिदंतराणि सुहृदां वृंदं समानंदति त्वं
चेदंचासि कांचनाङ्गि वदनांभोजे विकासश्रियम् ॥७२॥

हे सुवर्णवर्णे ! यदि तू अपने वदनकमलमें विकासकी शोभाको धारण करेगी (अर्थात् मुखको विकसित सहास्य करेगी) तो इस समयमें यह चंद्रमा तुच्छ हो जावेगा, पूर्णिमाकी रात्रि म्लानत्वको धारण करेगी, कुमुदवनमें सर्व ओर यथेष्ट संकोच उत्पन्न होगा, दिगन्त प्रकाशित होंगे और) हितूजन आनंद पावेंगे ('मानिनी' नायिका प्रति सखीकी उक्ति है। मान त्याग करनेसे इतनी श्रेयस्कर बातें होंगी यह सूचित करती है। मुख-रूपी कमलके विकसनेसे सूर्योदय हुआ यह जान उपरोक्त पदार्थोंके यथायोग्य व्यापार होने लगेंगे यह भाव है) ॥

पाटीरद्रुभुजंगपुंगवमुखायाता इवातापिनो वाता
वांति दहंति लोचनममी ताम्रा रसालद्रुमाः ॥ एते
हंत किरंति कूजितमयं हालाहलं कोकिला बाला
बालमृणालकोमलतनुः प्राणान् कथं रक्षतु ॥ ७३ ॥

चंदन वृक्ष संबंधी बडे बडे सर्पोंके मुखसे निकली हुई वायुके समान संतप्त समीर चलती है, आरक्तवर्णपल्लवयुक्त आम्रद्रुम नेत्रोंको दहन करते हैं, कोकिलाकी वाणी विष (सा) बरसाती है, हाय ! (फिर) नूतनोत्पन्नमृणालके समान कोमल अंग-

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

वाली बाला किस प्रकार प्राणकी रक्षा करेगी ? (वसंत आगममें विरहणीकी जो दशा होती है उसका वर्णन है। एक साथ अनेक भाव दरशानेसे 'समुच्चय' अलंकार हुआ) ॥

आयातैव निशा मनो मृगदृशामुन्निद्रमातन्वती मानो
मे कथमेष संप्रति निरातंकं हृदि स्थास्यति ॥
ऊहापोहमिमं सरोजनयना यावद्विधत्तेतरांताव-
त्कामनृपातपत्रसुषमं बिंबं बभासे विधोः ॥ ७४ ॥

मृगलोचनियोंके मनमें उन्निद्रताको विस्तार करनेवाली रात्रि आगई; अब यह मेरा मान हृदयमें निःशंक होकर कैसे रहेगा ? इस प्रकारके तर्क वितर्क जबतक कमलनयनी करती है तब तक मैनमहीपके छत्रकी शोभा (को धारण करने) वाले चन्द्रमाका बिंब उदित हुआ (नायिका सशंक होही रही थी कि रात्रिमें कामातुर होकर रोष त्यागि मुझे नायकके निकट जाना होगा कि चंद्र बिंबने दर्शन दे मान छुडानेमें सहायता दी। इसमें ' समाधि ' अलंकार है; ' समाधि' अलंकार उसे कहते हैं जहां किसी कारणसे कार्य सुगम हो जाता है) ॥

प्रभातसमयप्रभां प्रणयिनिह्नुवानां रसादमुष्य निज-
पाणिना दृशममीलयं लीलया ॥ अयं तु खलु
पद्मिनीपरिमलालिपाटच्चरै रवेरुदयमध्यगादधिक-
चारु तैर्मारुतैः ॥ ७५ ॥

---

१ नींदके न आनेके भावको । २ ' पृथ्वी ' छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

प्रातः कालकी शोभा (अर्थात् अरुणोदय) को प्रियतमसे छिपानेके लिये अनुरागवश मैंने कुतूहलसे उसके नयनोंको अपने हाथोंसे आच्छादित किया, परंतु कमलिनीके सौरभसमूहको हरण करनेवाले परमोत्कृष्ट पवनने सूर्योदयका बोध कराया (रविके निकल आनेसे नायकने सेजत्यागी और नायिकाका इच्छित कार्य जिसके अर्थ वह दिनकी रात्रि करनेको प्रयत्न करती थी न हुआ । विपरीत फलप्राप्तिसे इसमें ' विषम' अलंकार जानना) ॥

विदूरादाश्चर्यस्तिमितमथ किंचित् परिचयादुदंचच्चांचल्यं तदनु परितस्फारितरुचि ॥ गुरूणां संघाते सपदि मयि याते समजनि त्रपाघूर्णत्तारं नयनमिह सारंगजदृशः ॥ ७६ ॥

इस स्थलके मध्य गुरुजनोंके बीचमें अकस्मात् मेरे जानेसे मृगशावकनयनीके नयन (मुझे) दूरसे देख स्तब्ध (निकट आनेसे) इसे कुछ कुछ पहिचानते हैं यह समझ चंचल तदनंतर (अधिक समीप भागमें प्राप्त होनेसे) परम दीप्तिमान्, (और अत्यंत पार्श्ववर्ती होनेसे) लज्जाके कारण संभ्रमित तारोंवाले हुए (जिस स्थानमें देवपूजनार्थ अथवा अपर किसी कारणसे नायिका गई वहीं उसका चिरकाल प्रोषित पति भी मिला—उसे देख नायिकाके नयनोंकी जो दशा हुई उसका वर्णन नायक अपने मित्रसे करता है) ॥

---

१ आंखकी पुतली ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

कपोलावुन्मीलन्नवपुलकपाली मयि मनाङ्मृश-
न्त्यंतःस्मेरस्तबकितमुखांभोरुहरुचः ॥ कथंकारं
शक्याः परिगदितुमिंदीवरदृशो दलद्राक्षानिर्यद्रस-
भरसपक्षा भणितयः ॥ ७७ ॥

उत्पन्न हुई है नूतन पुलक जिनमें ऐसे (नायिकाके) कपोल मुझसे किंचित् मात्र हुए जानेपर मनहीं मनकी मुसुकानिसे पुष्पगुच्छके समान होनेवाले मुखरूपी कमलकी कांतिवाली सरोजनयनीके, दलित होनेवाले द्राक्षासे निकले हुए रससमूहके तुल्य (मीठे) वचन वर्णन किये जानेको किस प्रकार समर्थ हैं॥

राजानं जनयांबभूव सहसा जैवातृक त्वां तु यः सोऽयं
कुण्ठितसर्वशक्तिनिकरो जातो जरात्तों विधिः ॥
संप्रत्युन्मदखंजरीटनयनावक्त्राय नित्यश्रिये दाता
राज्यमखंडमस्य जगतो धाता नवो मन्मथः ॥ ७८ ॥

हे चंद्र ! जिस ब्रह्माने विना विचारे तुझे राजकीय पदवीको पहुंचाया अब वृद्धताके कारण उसकी सर्वशक्ति जाती रही, इस समयमें तो मन्मथरूपी नूतन ब्रह्माने उन्मत्त खंजनके समान नयनोंवाली (नायिका) के नित्य शोभायमान मुखको इस जगत्का अखंड राज्य प्रदान किया है (चंद्रमासे कोई कहता है कि तुझसे कामिनीका मुख अधिक शोभायमान है । अत्यंत सौंदर्यताके कारण यह संसारको जीतेगा यह भाव है) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

आविर्भूता यदवधि मधुस्यंदिनी नंदसूनोः कांतिः काचिन्निखिलनयनाकर्षणे कामंराज्ञा ॥ श्वासो दीर्घस्तदवधि मुखे पांडिमा गंडमूले शून्या वृत्तिः कुलमृगदृशां चेतसि प्रादुरासीत् ॥ ७९ ॥

समस्त नयनोंको (अपनी ओर) आकर्षण करनेवाली मधुरताको टपकानेवाली, परम कुशल ऐसी नंदनंदनकी अवर्णनीय कांति ज्योंही प्रकटी त्योंही कुलकानिको पालन करनेवाली मृगलोचनियोंके मुखमें दीर्घ श्वास, कपोलोंमें पियराई (और) मनमें शून्याकार वृत्ति उत्पन्न हुई ॥

प्रसंगे गोपानां गुरुषु महिमानं यदुपतेरुपाकर्ण्य स्विद्यत्पुलकितकपोला कुलवधूः ॥ विषज्वालाजालं झटिति वमतः पन्नगपतेः फणायां साश्चर्यं कथयतितरां तांडवविधिम् ॥ ८० ॥

प्रसंग (विशेष) में, वृद्ध गोपालोंके बीच, यदुपतिकी महिमको श्रवण करके, प्रस्वेद युक्त पुलकित कपोलवाली कुलवधू, विषज्वालाके समूहको बडे वेगसे वमन करनेवाले सर्पराज(कालीय) के फणोंका नृत्यविधि आश्चर्यसे कहती है (प्रियतमकी महिमा सुननेसे नायिकाको परम हर्ष हुआ परंतु गुरुजनोंसे उसका प्रकट करना उचित न जान कालीयमर्दनकी कथा कह कर अपने अंतर्गत भावको दुराया) ॥

कैशोरे वयसि क्रमेण तनुतामायाति तन्व्यास्तनावागामिन्यखिलेश्वरे रतिपतौ तत्कालमस्याज्ञया ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

आस्ये पूर्णशशांकता नयनयोस्तादात्म्यमंभोरुहां
किंचासीदमृतस्य भेदविगमः साचिस्मिते
तात्त्विकः ॥ ८१ ॥

बाल्यावस्थामें कृशताको प्राप्त होनेवाले अखिलेश्वर रतिपतिके तन्वी (कृशांगी) के शरीरमें क्रम क्रमसे प्रवेश होनेसे शीघ्रही उस (रतिपति) की आज्ञासे (नायिका के) मुखमें पूर्णचन्द्र बिंबकी आभा; नेत्रोंमें कमलकी सादृश्य और मंद मुसुकानिमें भेदरहित यथार्थ अमृतकी उत्पत्ति हुई (मदनके संचार होनेसे ऐसे व्यापार होते हैं यह प्रगटही है) ॥

शयिता शैवलशयने सुषमाशेषा नवेन्दुलेखेव ॥
प्रियमागतमपि सविधे सत्कुरुते मधुरवीक्षणैरेव॥८२॥

शोभामात्र शेष है जिसकी ऐसी (प्रतिपदाकी) नूतन उदित हुई इन्दुरेखाके समान, सिवारकी सेजपैं शयन करनेवाली(नायिका) पार्श्वभागमें भी आएहुए प्रियतमका मधुर दृष्टिहीसे सत्कार करती है (अत्यंत विरहजन्य दुःखके कारण उठने बैठनेकी शक्ति जाने और प्राणमात्र शेष रहनेसे प्रियकरकी ओर केवल दृष्टिपातही करसकी और दुसरे व्यापार नहीं यह भाव है) ॥

अधरद्युतिरस्तपल्लवा मुखशोभाशशिकांतिलंघिनी॥
तनुरप्रातिमा च सुभ्रुवो न विधेरस्य कृतिं विवक्षति॥८३॥

---

१ 'वियोगिनी' छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अधरकी द्युतिसे (नूतनोद्गत कोमल) पल्लवोंको परास्त करनेवाली, शोभायमान मुखवाली और (सौंदर्यतामें) चंद्रमाकी कांतिको उल्लंघन करनेवाली, मनोहर भ्रुकुटीवाली (नायिका) की अनुपम देह इस ब्रह्माकी कर्तव्यको नहीं कहती है (देहका निर्माकणर्ता कोई दूसराही है, ब्रह्मामें इतनी शक्ति कहां कि ऐसी सुंदर रचना करसकै यह भाव) ॥

व्यत्यस्तं लपति क्षणं क्षणमहो मौनं समालंबते सर्व-
स्मिन्विदधाति किं च विषये दृष्टिं निरालंबनाम् ॥
श्वासं दीर्घमुरीकरोति न मनागंगेषु धत्ते धृतिं
वैदेहीविरहव्यथाविकलितो हा हंत लंकेश्वरः ॥ ८४ ॥

वैदेहीके विरहजनित व्यथासे व्याकुल हुआ लंकेश्वर क्षणमें विपरीत (बातें) कहता है; क्षणमें मौन रहता है; (क्षणमें) सर्व (सांसारिक) विषयोंको शून्याकार दृष्टिसे देखता है. (क्षणमें) दीर्घश्वास लेता है; (और क्षणमें) किंचित्मात्र भी अंगमें धैर्य धारण नहीं करता; हाय यह क्या ही कष्ट है ॥

उदितं मंडलमिंदोरुदितं सद्यो वियोगिवर्गेण ॥
मुदितं च सकलललनाचूडामणिशासनेन मदनेन॥८५

चंद्रमंडल उदित हुआ; विरहीवर्ग तत्काल रोये और समस्त-कामिनीजनोंका श्रेष्ठ शासन करनेवाला मन्मथ आनन्दित हुआ (सायंकाल वर्णन है, एकही साथ तीन भाव उत्पन्न होनेसे 'समुच्चय' अलंकार हुआ) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

प्रादुर्भवति पयोदे कज्जलमलिनं बभूव नभः ॥
रक्तं च पथिकहृदयं कपोलपाली मृगीदृशः पांडुः ८६

मेघके प्रकट होनेसे आकाश कज्जलके समान मलिन, पथिकका हृदय अनुरागपूर्ण (और) कुरंगनयनी (नायिका) का कपोल प्रदेश पांडुवर्ण हुआ (इसमें भी 'समुच्चय' अलंकार है)॥

इदमप्रतिमं पश्य सरः सरसिजैर्वृतम् ॥
सखे मा जल्प नारीणां नयनानि दहन्ति माम् ॥८७॥

हे सखे ! कमलसे आच्छादित किये गये इस अद्वितीय सरोवरको देख, (इस प्रकार बोलनेवालेको उसका मित्र उत्तर देता है कि तू ऐसी) जल्पना न कर (कारण, कामिनीके नेत्र समान प्रफुल्लित कमलपुष्प अवलोकन करतेही) मुझे स्त्रीजनोंके नयन दहन करते हैं ॥

मुञ्चसि नाद्यापि रुषं भामिनि मुदिरालिरुदियाय ॥ इति सुदृशः प्रियवचनैरपायि नयनाब्जकोणशोणरुचिः ॥ ८८ ॥

हे भामिनि ! मेघमाला (आकाशमें) प्रादुर्भूत हुई (परंतु तू) अद्यापि रोष नहीं त्यागती है; इस प्रकार कहे गये प्रियतमके वचनोंने, सुलोचनी (नायिका) के नयनकमलके कोणमें उत्पन्न हुई अरुणताको निःशेष किया ।

आलोक्य सुन्दरि मुखं तव मन्दहासं
नन्दन्त्यमन्दमरविन्दधिया मिलिन्दाः ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

किं चासिताक्षि मृगलांछनसम्भ्रमेण
चंचूपुटं चटुलयन्ति चिरं चकोराः ॥ ८९ ॥

हे सुंदरि ! तेरे मन्दहासयुक्तमुखको अवलोकन कर अरविन्दबुद्धिसे (अर्थात् उसे अरविन्द जान, आ संमताद्भागमें) भ्रमर बहुशः गुंजार करते हैं, और हे कृष्णनयने ! मृगलांछन (चन्द्रमा) के भ्रमसे (इसी मुखचंद्र पर) चकोरपक्षी चिरकाल पर्य्यन्त चोंचको चंचल करते हैं । (चलाना चाहते हैं यह भाव है) ॥

स्मितं नैतत्किन्तु प्रकृतिरमणीयं विकसितं
मुखं ब्रूते को वा कुसुममिदमुद्यत्परिमलम् ॥
स्तनद्वन्द्वं मिथ्या कनकनिभमेतत्फलयुगं
लता सेयं रम्या भ्रमरकुलनम्या न रमणी ॥ ९० ॥

यह मुसुकानि नहीं है, किंतु स्वभाव सौन्दर्यताका विकास है, इसे मुख कौन कहता है ? यह सुगंधमय पुष्प है, ये स्तनद्वय नहीं है, सुवर्णवर्ण दो फल हैं, यह भ्रमर समूहसे नम्र की गई मनोहर लता है, रमणी नहीं (स्वधर्मको गोपन कर अन्यधर्मका आरोप करनेसे 'शुद्धापह्नुति' अलंकार हुआ) ॥

संग्रामांगणसंमुखाहतकियद्विश्वंभराधीश्वरव्यादीर्णीकृतमध्यभागविवरोन्मीलन्नभोनीलिमा ॥ अंगारप्रखरैः करैः कवलयन्नेतन्महीमंडलं मार्तण्डोऽयमुदेति केन पशुना लोके शशांकीकृतः ॥ ९१ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

संग्रामके आंगनकी अग्रभूमिमें प्राण त्यागे हुए अनेक महीपालोंसे विदीर्ण किये गये मध्यभागमें छिद्र हो जानेसे प्रकट हुई है आकाशकी नीलिमा जिसमें ऐसा, अपने अंगार समान प्रदीप्त किरणोंसे इस भूमंडलको ग्रास करताहुआ यह मार्तण्ड (सूर्य) उदय हुआ है, किस पशुने (इस) लोकमें (इसे) शशांक (चंद्र) किया ? (कोई विरहिणी चंद्रमासे संतप्त होकर उसे सछिद्र सूर्य मानती है, सूर्यमें कालिमा नहीं होती परंतु वह उसे भी दृढ करती है कि यह कालिमा सूर्य ही की है क्योंकि रणमें प्राण त्याग करनेवाले योद्धा सूर्यमंडलको भेद करके ब्रह्मलोकको जाते हैं; इससे उन वीरोंके प्रवेश करनेसे सूर्यके मध्य छिद्र हो जानेसे आकाशकी नीलिमा देख पडती है, अतएव यह सिद्ध हुआ कि यह चंद्र नहीं सूर्यही है, वीरोंका सूर्यमंडल भेदना शास्त्रविहित है) ॥

श्यामं सितं च सुदृशो न दृशोः स्वरूपं
किं तु स्फुटं गरलमेतदथामृतं च ॥
नो चेत्कथं निपतनादनयोस्तदैव
मोहं मुदं च नितरां दधते युवानः ॥ ९२ ॥

सुलोचनीके (नायिका) के नेत्रोंका श्याम और शुभ्र स्वरूप नहीं है किंतु यह स्फुट अमृत तथा विष है, यदि ऐसा न होता तो इनका दृष्टिपात होते ही तत्काल युवापुरुष अत्यंत मोह तथा मोद (आनन्द) को क्यों प्राप्त होते ? (नयनों-

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

की श्यामता, गरल और शुभ्रता अमृत है. इसीसे नायिका जिस पुरुषकी ओर अमृत दृष्टिसे अर्थात् प्रसन्न होकर देखती है उसे परमानंद होता है और जिसे विष दृष्टिसे अर्थात् क्रुद्ध होकर देखती है उसे मोह होता है यह भाव इसमें 'अपह्नुति' अलंकार है) ॥

अलिर्मृगो वा नेत्रं वा यत्र किंचिद्विभासते ॥
अरविंदं मृगांको वा मुखं वेद मृगीदृशः ॥ ९३ ॥

इस मृगनयनीका (यह) मुख है, अथवा मृगांक (चंद्रमा) है; अथवा कमल है, और इस (मुख) में शोभायमान (यह) नेत्र है, अथवा मृग है, अथवा भ्रमर है ? (ऐसी शंका होती है । मुखमें नेत्र, मृगांकमें मृग और अरविन्दमें अलि होतेही हैं इससे शंका अधिक पुष्ट हुई । यह 'संदेह, अलंकार है) ॥

सुविरलमौक्तिकतारे धवलांशुकचंद्रिकाचमत्कारे ॥
वदनपरिपूर्णचन्द्रे सुन्दरि राकाऽसि नात्रसन्देहः॥९४॥

(हारके विरल) मौक्तिकरूपी तारोंवाली' शुभ्र वस्त्र (के प्रकाश) रूपी चंद्रिकासे चमत्कारवाली, वदनरूपी पूर्णचंद्रवाली हे सुन्दरि ! तू पौर्णिमा है इसमें संदेह नहीं ('रूपक' अलंकार है) ॥

रूपजला चलनयना नाभ्यावर्ता कचावलिभुजंगा ॥
मज्जन्ति यत्र संतः सेयं तरुणी तरंगिणीविषमा॥९५॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

रूपरूपी जलवाली, चंचलनयनरूपी (मीनवाली) नाभि-रूपी भ्रमरवाली, केशसमूहरूपी भुजंगमवाली यह तरुणी दुस्तर सरिता है; जिसमें (शृंगार शास्त्र प्रवीण) सज्जन मज्जन करते हैं (यह भी 'रूपक' है) ॥

शोणाधरांशुसंभिन्नास्तन्वि ते वदनांबुजे ॥
केसरा इव काशंते कांतदंतालिकांतयः ॥ ९६ ॥

हे कृशांगि ! अरुणअधरकी किरणोंसे मिश्रित तेरे वदन-कमलमें मनोहर दंतपंक्तिकी कांति केसर (किंजल्क) के समान शोभायमान है ॥

दयिते रदनत्विषां मिषादयि तेऽमी विलसंति
केसराः ॥ अपि चालकवेषधारिणो मकरंदस्पृहया
लवोऽलयः ॥ ९७ ॥

अयि कामिनि ! तेरी दशनकांतिके मिषसे किंजल्क और मकरंदके लोभी (ये) अलक वेषधारी भ्रमर, शोभायमान हो रहे हैं ('अपह्नुति' अलंकार है, इससे यह ध्वनि निकलती है कि, तू कामिनी नहीं है किंतु कमलिनी है) ॥

तया तिलोत्तमीयंत्या मृगशावकचक्षुषा ॥
ममाऽयं मानुषो लोको नाकलोक इवाभवत् ॥ ९८ ॥

उस तिलोत्तमा नाम अप्सराके समान आचरण करनेवाली मृगशावकनयनीके कारण यह मेरा मर्त्यलोक स्वर्गलोक तुल्य हुआ है ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अंकायमानमलिके मृगनाभिपंकं पंकेरुहाक्षि
वदनं तव वीक्ष्य बिभ्रत् ॥ उल्लासपल्लवितकोमल-
पक्षमूलाश्चंचूपुटं चटुलयंति चिरं चकोराः ॥ ९९ ॥

हे कमलनयने ! भालमें कस्तूरी तिलक संयुक्त शोभायमान तेरे मुखको अवलोकन कर आनंदसे प्रफुल्लित किये हैं कोमल पंखमूल जिन्होंने ऐसे चकोर पक्षी चिरकाल पर्यंत चोंचको चंचल करते हैं (चलाना चाहते हैं यह भाव । भालमें कस्तूरीके कृष्ण वर्णके तिलकके कारण चकोरोंको सकलंक चंद्रमाका भ्रम होनेसे यह 'भ्रम' अलंकार हुआ) ॥

शिशिरेण यथा सरोरुहं दिवसेनामृतरश्मिमंडलम् ॥
न मनागपि तन्वि शोभते तव रोषेण तथेदमाननम् १००

हे कृशाङ्गि ! जैसे शिशिर ऋतुमें कमल और दिनमें चंद्र मंडल किंचित्मात्रभी शोभायमान नहीं होते वैसेही रोषमें यह तेरा मुख सुशोभित नहीं होता ॥

चलभृंगमिवांभोजमधीरनयनं मुखम् ॥
तदीयं यदि दृश्येत कामः क्रुद्धोऽस्तु किं ततः ॥ १०१ ॥

चंचल भृंगयुक्तकमलके समान चपल नयनोंवाला उस (कामिनी) का मुख यदि दर्शनको मिले तो काम क्रुद्ध होकर क्या कर सकैगा ? ॥

शतकोटिकठिनचित्तः सोऽहं तस्याः सुधैकमयमूर्त्तेः ॥
येनाकारिषि मित्रं सुविकलहृदयो विधिर्वाच्यः १०२॥

१ 'वियोगिनी' छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

जिसने उस सुधास्वरूप (नायिका) की मित्रता संपादन की वही विधिवंचित, विकल हृदय और वज्रके समान कठोर चित्त-वाला मैं हूं (नायिकाको प्रीतिपात्र बनाकर कुछ कालके अन-न्तर मूर्खतावश उसका त्यागकर पश्चात् पश्चात्ताप करनेवाले नायककी उक्ति है) ॥

श्यामलेनांकितं बाले भाले केनापि लक्ष्मणा ॥
मुखं तवांतरासुप्तभृंगफुल्लांबुजायते ॥ १०३ ॥

हे बाले ! भालमें श्यामवर्णके मनोहर चिह्नसे चिह्नित तेरा मुख, मध्यमें सोए हुए भ्रमर संयुक्त कुसुमित कमलके समान शोभायमान है ॥

अद्वितीयं रुचात्मानं मत्वा किं चन्द्र हृष्यसि ॥
भूमंडलमिदं मूढ केन वा विनिभालितम् ॥ १०४ ॥

हे चन्द्र ! (मैं बडा) कांति (मान् हूँ इस विचार) से अपनेको अद्वितीय मान क्यों हर्षित होता है ? अरे) मूढ ! इस भूमंडलको किसने देखा है ? (इसमें तेरे समान औरभी सौन्दर्यमान हैं यह भाव है (किसी विरहीकी उक्ति है; मेरी प्रियतमाका मुख त्वत्तुल्य दीप्तिमान है यह ध्वनी इसमें निकलती है) ॥

नीलांचलेन संवृतमाननमाभाति हरिणनयनायाः ॥
प्रतिबिंबित इव यमुनागभीरनीरांतरेणांकः ॥ १०५ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

नीलपटसे आच्छादित मृगनयनीका मुख यमुनाके गंभीर नीरमें प्रतिबिंबित चन्द्रमाके समान शोभायमान है ॥

स्तनाभोगे पतन् भाति कपोलात्कुटिलोऽलकः ॥
शशांकबिंबतो मेरौ लंबमान इवोरगः ॥ १०६ ॥

कुटिल अलक, कपोलसे कुचमंडलके ऊपर गिर; चन्द्रबिंबसे सुमेरुपर्वत पै लंबायमान सर्पके समान शोभा देती है ॥

यथा लतायाः स्तबकानतायाः स्तनावनम्रे
नितरां समाऽसि ॥ तथा लता पल्लविनी
सगर्वे शोणाधरायाः सदृशी तवाऽपि ॥ १०७ ॥

हे स्तनभारनम्रे ! जैसे पुष्पगुच्छोंसे नतहुई लताके समान (तू) अत्यंत (नम्र) है, तैसी ही हे सगर्वे ! (गर्वसहिते) तेरे अरुण अधरोंके सदृश (नूतन) पल्लववाली लताभी है (स्तनभारसे विशेष नम्र होनेके कारण मैं नतलताकी उपमान हुई यह समझ गर्व न कर, पल्लविनी लता भी तेरे अधरोंकी उपमान है यह भाव है)॥

इदं लताभिः स्तबकानताभिर्मनोहरं हंत वनांतरालम् ॥ सदैव सेव्यं स्तनभारवत्यो न चेद्युवत्यो हृदयं हरेयुः ॥ १०८ ॥

स्तनभारवती युवती यदि चित्तको न हरण करैं तो पुष्पगुच्छसे नम्रहुई लताओंसे सौन्दर्यमान काननका मध्यभाग सदैव सेवने योग्य है (नम्रलताओंके अवलोकन कर कामिनीका स्मरण होगा यह भाव है) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

सामदागमनबृंहिततोषा जागरेण गमिताखिल-
दोषा ॥ बोधिताऽपि बुबुधे मधुपैर्न प्रातराननज-
सौरभलुब्धैः ॥ १०९ ॥

मेरे आगमनसे अधिक हुआ है संतोष जिसको (और) जागरणसे व्यतीत की है सारी रात्रि जिसने ऐसी वह (नायिका प्रातःकाल मुखोत्पन्न सुगंधके लोभी मधुपोंके जगानेसे भी न जगी ॥

अविचिंत्यशक्तिविभवेन सुंदरि प्रथितस्य शंबर-
रिपोः प्रभावतः ॥ विधुभावमंचिततमां तवाननं
नयने सरोजदलनिर्विशेषताम् ॥ ११० ॥

हे सुन्दरि ! अपूर्व शक्तिवैभवसे प्रसिद्ध मन्मथके प्रभावसे तेरा मुख चंद्रभावको और नयनद्वय कमलदलकी समताको प्राप्त हुए हैं (मदन संचार होनेसे मुख चंद्र समान और नयन कमल समान हुए यह भाव है) ॥

मीनवती नयनाभ्यां करचरणाभ्यां प्रफुल्लकमलवती ॥
शैवालिनी च केशैः सुरसेयं सुंदरी सरसी ॥ १११ ॥

युगलनयनोंसे मीनवाली, कर तथा चरणोंसे प्रफुल्लित कमलवाली और केशकलापसे सिवारवाली यह रसमयी सुंदरी सरोवरिनी है (' रूपक ' अलंकार है)

---

१ यह ' स्वागता ' छंद है । २ ' मंजुभाषिणी ' छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

पांथ मंदमते किं वा संतापमनुविन्दसि ॥
पयोधरं समाश्रयस्व येन शांतिमवाप्नुयाः ॥ ११२ ॥

हे मंदमति पथिक ! क्यों (काम) संतापको सहता है ? (अरे) पयोधर (कुच) की आशा कर जिससे शांति प्राप्त होवै (पथिकको उपदेश है कि, कंदर्पताप पयोधर ही शांत करेंगे इससे उनका अवलंबन उचित है । यह श्लोक द्व्यर्थिक है; दूसरे अर्थमें संतापसे दाह और 'पयोधर' से 'मेघ' अर्थ लेना चाहिये) ॥

संपश्यतां तामतिमात्रतन्वीं शोभाभिराभासितसर्व-
लोकाम् ॥ सौदामिनी वा सितयामिनी वेत्येवं
जनानां हृदि संशयोऽभूत् ॥ ११३ ॥

शोभासे सर्व लोकको सुशोभित करनेवाली उस अतीव कृशाङ्गी (नायिका) को अवलोकन करनेवाले मनुष्योंके हृदयमें 'यह सौदामिनी है अथवा शुक्ल यामिनी है इस प्रकारका संशय उत्पन्न हुआ ('संदेह' अलंकार है) ॥

सपल्लवा किं नु विभाति वल्लरी सफुल्लपद्मा किमयं
नु पद्मिनी ॥ समुल्लसत्पाणिपदां स्मिताननामितीक्षमाणैः समलंभि संशयः ॥ ११४ ॥

उल्लसित करचरणोंवाली हास्यमुखी (नायिका) के देखनेवालोंको 'पल्लव सहित यह लताही शोभायमान है क्या' ?

---

१ 'इन्द्रवज्रा' छंद है । २ 'वंशस्थ' छंद है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अथवा ' कुसुमित है कमल जिसमें ऐसी पंझिनी ही है क्या ' इस प्रकारका संशय हुआ (यह भी ' संदेह ' अलंकार है) ॥

नेत्राभिरामं रामाया वदनं वीक्ष्य तत्क्षणम् ॥
सरोजं चन्द्रबिंबं वेत्यखिलाः समशेरत ॥ ११५ ॥

उस कालमें, नेत्रोंको आनंद देनेवाले कामिनीके मुखको देख ' यह कमल है अथवा चंद्रबिंब है ' इस प्रकार सबको शंका हुइ ॥

कनकद्रवकांतिकांतया मिलितं राममुदीक्ष्य कांतया ॥
चपलायुतवारिदभ्रमान्ननृते चातकपोतकैर्वने ॥ ११६ ॥

सुवर्णरसकी कांतिके समान सुंदर सीताजीके संगमें रामचंद्रको अवलोकन कर, चपलासंयुक्त यह मेघही है. इस भ्रमसे चातकशावकोंने वनमें नृत्य किया (' भ्रम ' अलंकार है)

वनितेति वदंत्येतां लोकाः सर्वे वदंतु ते ॥
यूनां परिणता सेयं तपस्योति मतं मम ॥ ११७ ॥

सर्वजन इसे ' वनिता ' कहते हैं सो वे कहैं (परंतु) मेरे मतसे तो यह युवा पुरुषोंकी तपस्याका फल है ॥)

स्मयमानाननां तत्र तां विलोक्य विलासिनीम् ॥
चकोराश्चंचरीकाश्च मुदं परतरां ययुः ॥ ११८ ॥

उस स्मितमुखी विलासिनी (नायिका) को देख चकोरों और भ्रमरोंको अत्यंत आनंद हुआ (चकोर, मुखको चन्द्र और भ्रमर कमल मान प्रमुदित हुए यह भाव । ' भ्रम ' अलंकार है) ॥

---

१ तडागिनी, सरोवारिनी । २ 'वैतालीय' छंद ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

वदनकमलेन बाले स्मितसुषमालेशमादधासि यदा ॥
जगदिह तदैव जाने दशार्धबाणेन विजितमिति॥११९॥

हे बाले ! जब तू वदनकमलमें लेशमात्र मुसुकानिकी शोभाकी धारण करती है तभी मैं यह जानता हूं कि इस जगत्को पंचसायक [मन्मथ] ने विजय किया ॥

कलिंदजानीरभरेऽर्धमग्ना बकाः प्रकामं कृतभूरिशब्दाः ॥ ध्वांतेन वैराद्विनिगीर्यमाणाः क्रोशंति मन्ये शशिनः किशोराः ॥ १२० ॥

यमुनाजलमें निमग्न है अर्द्ध शरीर जिनका ऐसे; बहुत शब्द करनेवाले ये बक (नहीं किंतु) वैरभावके कारण अंधकारसे (अर्द्ध) निगलेगये मेरे जान चंद्रमाके बालक रुदनकर रहे हैं॥

परस्परासंगसुखान्नतभ्रुवः पयोधरौ पीनतरौ बभूवतुः ॥
तयोरमृष्यन्नयमुन्नतिं परामवैमि मध्यस्तनिमानमेति १२१

परस्परके संयोग सुखसे, नम्रभृकुटीवाली (नायिका) के पयोधर विशेष स्थूल हुए । मेरे जान इनकी परम उन्नतिको न सहन करनेसे कटिको कृशता हुई (लंककी कृशताका कारण कुचोंकी स्थूलताका न सहन है यह भाव । 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है) ॥

जनमोहकरं तवालि मन्ये चिकुराकारमिदं घनांधकारम्॥ वदनेंदुरुचामिहाप्रचारादिव तन्वंगि नितांतकांतिकांतम् ॥ १२२ ॥

---

१ माल्यभारा ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे आलि ! हे कृशांगि ! मनुष्योंको मोह उत्पन्न करनेवाले और मुखरूपी चन्द्रमाकी कांतिका प्रचार नहीं है जिसमें ऐसे इस तेरे महा मनोहर केशपाशको मैं निबिड अन्धकार मानता हूँ ('उत्प्रेक्षा' अलंकार है) ॥

दिवानिशं वारिणि कंठदघ्ने दिवाकराराधनमाचरंती ॥ वक्षोजतायै किमु पक्ष्मलाक्ष्यास्तपश्चरत्यंबुजपंक्तिरेषा ॥ १२३ ॥

कंठपर्यन्त जलमें निशिदिन दिवाकर [सूर्य] को आराधनेवाली यह कमलपंक्ति, क्या सुलोचनी (नायिका) के कुच होनेके लिये तपश्चर्या करती है ? ('फलोत्प्रेक्षा अलंकार है)॥

वियोगवह्निकुंडेऽस्मिन् हृदये ते वियोगिनि ॥
प्रियसंगसुखायैव मुक्ताहारस्तपस्यति ॥ १२४ ॥

हे वियोगिनी ! विरहरूपी अग्निके कुंड धारण करनेवाले इस तेरे हृदयमें मुक्ताहार, प्रियतमके संगसे होनेवाले सुखके अर्थ, तपस्या करता है (यह भी 'उत्प्रेक्षा ' है) ॥

निधिं लावण्यानां तव खलु मुखं निर्मितवतो महामोहं मन्ये सरसिरुहसूनोरुपचितम् ॥ उपेक्ष्य त्वां यस्माद्विधुमयमकस्मादिह कृती कलाहीनं दीनं विकल इव राजानमकरोत् ॥ १२५ ॥

तेरे लावण्यराशि मुखको निर्माण करनेवाले ब्रह्मदेवको मेरे जान महामोह प्राप्त हुआ; कारण, तेरी उपेक्षा कर, इस क्रिया-

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

कुशल विधिने विकल (बुद्धि) की भांति कलाहीन दीन चन्द्रमाको इस लोकमें राजा किया (सकल रमणीय पदार्थोंमें श्रेष्ठ तुझे करनाथा परंतु तेरे महामनोहर मुखको देख ब्रह्माने मोहित (सदसद्विचार हीन) होकर राजत्व चन्द्रको दिया यह भाव)॥

स्तनांतर्गतमाणिक्यवपुर्बहिरुपागतम् ॥
मनोऽनुरागि ते तन्वि मन्ये वल्लभमीक्षितुम् ॥१२६॥

हे कृशांगि ! तेरा अनुरागी मन स्तनोंके मध्य माणिक्यके रूपमें बाहर आय मेरे जान प्रियतमको अवलोकन करनेकी इच्छा करता है ('अपह्नुति' अलंकार है) ॥

जगदंतरममृतमयैरंशुभिरापूरयन्नितराम् ॥
उदयाति वदनव्याजात् किमु राजा हरिणशाव-
नयनायाः ॥ १२७ ॥

मृगशावकनयनीके वदन [मुख] के मिषसे जगतको अमृत मय किरणोंसे भली भांति पूरित करनेके लिये क्या यह चंद्रमा उदय हुआ है ? ('उत्प्रेक्षा' अलंकार है) ॥

तिमिरशारदचन्दिरचान्द्रिकाः कमलविद्रुमचंपक-
कोरकाः ॥ यदि मिलंति कदापि तदाननं खलु
तदा कलया तुलयामहे ॥ १२८ ॥

(निबिड) अंधकार, शरच्चन्द्र, चंद्रिका, कमल, विद्रुम और चंपककली यदि किसी काल (एक पदार्थ) में मिलैं तो

---

१ यह 'द्रुतविलंबित' छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

म उस नायिकाके आननकी एक कलाकी तुलना करूँ (तिमिर-केशकलाप, शरच्चन्द्र-मुख, चंद्रिका-लावण्यता, कमल-नयन, विद्रुम-ओष्ठ, चंपककलिका-दंत जानना) ॥

प्रिये विषादं जहिहीति वाचं प्रिये सरागं वदति प्रियायाः ॥ वारामुदारा विजगाल धारा विलोचनाभ्यां मनसश्च मानः ॥ १२९ ॥

' हे प्रिये । विषाद त्यागिये ' इस प्रकार अनुरागयुक्त प्रियतमके कहनेसे नायिकाके लोचनद्वयसे अपरिमित अश्रुधारा और मनसे मान (दोनों एकही साथ) स्खलित हुए । (एक कारणसे दो कार्य भये इससे ' समुच्चय ' अलंकार हुआ) ॥

राज्याभिषेकमाज्ञाय शंबरासुरवैरिणः ॥
सुधाभिर्जगतीमध्यं लिंपतीव सुधाकरः ॥ १३० ॥

मन्मथका राज्याभिषेक (होनेवालाहै यह) जान चंद्रमा पृथ्वीतलको मानों सुधासे लीप रहा है (चन्द्रिकाका वर्णनहै । इसमें 'समासोक्ति ' और ' उत्प्रेक्षा ' अलंकारका संकर है) ॥

आननं मृगशावाक्ष्या वीक्ष्य लोलालकावृतम् ॥
भ्रमद्भ्रमरसंभारं स्मरामि सरसीरुहम् ॥ १३१ ॥

मृगशावकनयनीका, चचल अलकसे आच्छादित मुख अवलोकन कर मैं भ्रमण करनेवाले भ्रमरसमूहसंयुक्त कमलको स्मरण करताहूं (' स्मृति ' अलंकार है) ॥

यांती गुरुजनैः साकं स्मयमानाननांबुजा ॥
तिर्यग्ग्रीवं यदद्राक्षीत् तन्निष्पत्राकरोज्जगत् ॥ १३२॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

गुरुजनोंके साथ गमन करनेवाली, सहास्यमुखरूपी कमलवाली (बाला) ने जिसकी (ओर) तिरछी ग्रीवा करके देखा उसको महान् व्यथा उत्पन्न की (इसमें 'निदर्शन' अलंकार है) ॥

नयनानि वहंतु खंजनानामिह नानाविधमंगभंगभाग्यम् ॥ सदृशं कथमाननं सुशोभं सुदृशो भंगुरसंपदाऽम्बुजेन ॥ १३३ ॥

(जिसके नेत्रोंको अवलोकन कर) खंजन नेत्र नाना प्रकार (अपनेको) हतभाग्य समझते हैं (उस) सुलोचनीके मनोहर मुखकी सादृश्य भंगशील है शोभा जिसकी ऐसे कमलसे कैसे होसकती है ? (उपमानसे उपमेयकी अधिकता वर्णन करनेसे 'व्यतिरेक' अलंकार हुआ) ॥

मृणालमंदानिलचंदनानामुशीरशैवालकुशेशयानाम् ॥ वियोगदूरीकृतचेतनानां विनैव शैत्यं भवति प्रतीतिः ॥ १३४ ॥

वियोगके कारण जाती रही है चेतना जिनकी ऐसे पुरुषोंको मृणाल, मंद वायु, चंदन खस शैवाल (सिवार) और कमल शीतलता शून्य अर्थात् उष्ण प्रतीत होते हैं ॥

विबोधयन् करस्पर्शैः पद्मिनीं मुद्रिताननाम् ॥ परिपूर्णोऽनुरागेण प्रातर्जयाति भास्करः ॥ १३५ ॥

प्रातःकाल मुकुलितमुखी कमलिनीको किरणस्पर्शसे जाग्रत करनेवाला प्रेमपूर्ण भास्कर (सूर्य) जय पावै। (प्रस्तुत सूर्य

१ 'माल्यभारा'।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag, Digitized by eGangotri

वर्णन अप्रस्तुत नायक वृत्तांतमें घटित होनेसे 'समासोक्ति' अलंकार हुआ। नायकपक्षमें पद्मिनीसे पद्मिनी नायिका; मुकुलित मुखीसे आलस्यमुखी करस्पर्शसे हस्तस्पर्श और अरुणसे अनुरागी अर्थ लेना चाहिये)॥

आनम्य वल्गुवचनैर्विनिवारितेऽपि रोषात् प्रयातु-
मुदिते मयि दूरदेशम् ॥ बाला करांगुलिनिदेशवशं-
वदेन क्रीडाबिडालशिशुनाऽऽशु रुरोध मार्गम् १३६॥

नम्र और कोमल वचनोंसे निवारण किये जानेपै भी क्रोधवशात् दूरदेशको प्रयाण करनेके लिये मुझ उद्यत होनेवालेका मार्ग, बालाने हस्तकी अंगुलीकी आज्ञासे वश किये गये, विनोदी बिडालशावक (खेलके हेतु पाले हुए बिल्लीके बच्चे) से रोका। (विदेशगमन वेलामें बिडालका मार्ग काटना अशुभ सूचक होता है)॥

अभूदप्रत्यूहः कुसुमशरकोदंडमहिमा विलीनो
लोकानां सह नयनतापोऽपि तिमिरैः ॥ तवाऽ-
स्मिन् पीयूषं किरति परितस्तन्वि वदने कुतो हेतोः
श्वेतो विधुरयमुदेति प्रतिदिनम् ॥ १३७ ॥

हे कृशांगि ! इस तेरे मुखमें मन्मथके धनुषका प्रताप निर्विघ्न (उदित) हुआ, (और ऐसा होनेसे) अन्धकारके साथ मनुष्योंका नयनताप भी नष्ट हुआ; (तो भला) सर्व ओर अमृत बरसाते हुए यह श्वेत[१] चंद्रमा प्रतिदिन फिर क्यों

१ चंद्रमा क्षयी होनेके कारण 'श्वेत' शब्दसे वर्णकी पांडुरता सूचित की।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

उदित होता है ? (मुखमें चन्द्रमाका आक्षेप करके उसको निष्फल ठहराया जबतक चंद्रोदय नहीं होता तबतक अन्धकार रहता है, उसके उदय होनेसे सर्व ओर प्रकाश फैलजाता है; और मनुष्योंको उसकी शीतल किरणोंसे सुख होता है—स्त्री जबतक युवा नहीं होती तबतक उसका मुख मलीन क्या तिमिराच्छादितसा रहता है, शरीरमें मदनसंचार होनेसे वही मुख परम प्रकाशमान हो जाता है, और देखनेवालोंको आनंद देता है, इस प्रकार चंद्र और कामिनीके मुखकी तुलना उपरोक्त श्लोकमें की है। इसमें 'आक्षेप' और 'सहोक्ति' अलंकारका संकर है)॥

विनैव शस्त्रं हृदयानि यूनां विवेकभाजामपि दारयंत्यः॥ अनल्पमायामयवल्गुलीला जयंति नीलाब्जदलायताक्ष्याः॥ १३८॥

विवेकी युवा पुरुषोंके भी हृदयको विना शस्त्रके विदारण करनेवाली, महामनोहर मायावी लीलावाली कमलदललोचनी (कामिनी) जय पावैं। (शस्त्ररूपी कारणके विना हृदय विदारणरूपी कारज होनेसे 'विभावना' अलंकार हुआ)॥

यदवधि विलासभवनं यौवनमुदियाय चंद्रवदनायाः॥ दहनं विनैव तदवधि यूनां हृदयानि दह्यंते॥ १३९॥

चंद्रवदनी (कामिनी) का विलासस्थानरूपी यौवन जब तक नहीं उदित हुआ तबतक अग्निके विनाही तरुण पुरुषोंके हृदय दग्ध होने लगे (यह भी 'विभावना' अलंकार हुआ)॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag, Digitized by eGangotri

न मिश्रयति लोचने सहसितं न संभाषते कथासु
तव किं च सा विरचयत्यरालां भ्रुवम् ॥ विपक्ष-
सुहृद्दशः कथामिति निवेदयंत्या पुरः प्रियस्य शिथि-
लीकृतः स्वविषयेऽनुरागग्रहः ॥ १४० ॥

सपत्नी मुग्धा नायिकाके ऊपर विशेष प्रीति करनेवाले नायकसे मुग्धाके दोष वर्णन करके उसके विषयमें नायकको अरुचि-उत्पन्न करनेवाली प्रौढा नायिकाकी उक्ति हैः—' वह (मुग्धा) नयनोंको नहीं मिलाती है, तव संबन्धी कथामें सहास्य (सुख होकर) भाषण नहीं करती किंतु भृकुटी वक्र चढाती है, इस प्रकार सपत्नीकी कथाको प्रियके सन्मुख निवेदन करनेवाली नायिकाने नायकके मुग्धाविषयक अनुरागको शिथिल [न्यून] किया । (असत्य बातका सत्यैव प्रतिपादन करनेसे ' विषम ' अलंकार हुआ) ॥

वडवानलकालकूटवन्मकरव्यालगणैः सहैधितः ॥
रजनीरमणो भवेन्नृणां न कथं प्राणवियोगकारणम् १४१॥

वडवाग्नि, कालकूट [विष], मकर,[नक्र]और सर्पगणोंके सह वृद्धिंगत चंद्रमा मनुष्योंके प्राणनाशका कारण क्यों न होवै? (जिस समुद्रमें ये उपरोक्त दुःखदाई पदार्थ तथा जीव रहते हैं उसीसे चंद्रमाकाभी उत्पत्ति है, इस हेतु उनका संग होना इसे संभवही है; बस तो जिस प्रकार उसके साथी प्राण लेनेमें कुशल

---

१ ' पृथ्वी छन्द है । २ ' वैतालीय ' छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हैं उसी प्रकार चंद्र भी क्यों न होना चाहिये ? (यह किसी विरहिणीकी उक्ति है । दुष्टसंगरूपी कारणके अनुसार प्राणघातरूपी कारजका वर्णन करनेसे ' सम ' अलंकार हुआ) ॥

लभ्येत पुण्यैर्गृहिणी मनोज्ञा तया सुपुत्राः परितः पवित्राः ॥ स्फीतं यशस्तैः समुदेति नित्यं तेनास्य नित्यः खलु नाकलोकः ॥ १४२ ॥

पुण्यसे सुंदर स्त्री मिलती है; स्त्रीसे सच्चरित्र सुपुत्र (होते हैं); पुत्रोंसे विमल यशका दिन दिन उदय होता है. और यशसे इसको (यह लोक) नित्य स्वर्लोकतुल्य (हो जाता है) । इस पद्यमें एक वस्तु दूसरेका कारण है इससे 'कारणमाला' अलंकार हुआ ॥

प्रभुरपि याचितुकामो भजते वामोरु लाघवं सहसा ॥
यदहं त्वयाऽधरार्थी सपदि विमुख्या निराशतां नीतः १४३

हे वामोरु ! याचना करनेवाले प्रभु [स्वामी–समर्थवान्पुरुष] भी सहसा लघुत्वको प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार तुझ पराङ्मुखीके अधर (पान) की इच्छा करनेवाला मैं शीघ्रही निराशताको पहुँचा हूं (अधर चुंबन करनेका अधिकार भी होकर निराश किया जाना याचनाका महाही दुःखद फल है; जब अधिकारियोंको उन वस्तुओंके याचनेमें जिनपै उनका सत्त्व है यह दशा होती है तो साधारण याचकोंको लघुत्व मिलना यथार्थ ही है । इसमें ' अर्थान्तरन्यास ' अलंकार है) ॥

---

१ जिस पुरुषको ये पदार्थ प्राप्त हैं उसको । २ मनोहरोरु सुंदर है जंघा जिसकी ऐसी ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

जलकुंभमुंभितरसं सपदि सरस्याः समानयंत्यास्ते ॥
तटकुंजगूढसुरतं भगवानेको मनोभवो वेद ॥ १४४ ॥

जलपूरित जलघट सरोवरसे सवेग लानेवाली तेरी, तटके कुंजमें गुप्त रतिको एक भगवान् मनोभव (कामदेव) ही जानते ह (गुप्त रति करनेवाली नायिकाके प्रति सखीकी उक्ति है । सुरतमें भी कंप, निःश्वास इत्यादिक होते हैं और वेगसे चलनेमें भी, इस कारण उपरोक्त नायिकाकी यह दशा इन दोमेंसे किस कारणसे हुई यह स्पष्ट न होनेसे 'मीलित' अलंकार हुआ)॥

त्वामिव पथिकः प्रियो मे विटपिस्तोमेषु गमयति क्लेशान्॥
किमितोऽन्यत् कुशलं मे संप्रति यत्पांथ जीवामि॥ १४५॥

किसी पथिकसे कुशलप्रश्न पूंछी गई कोई 'प्रोषितपतिका' नायिका उत्तर देती हैः—हे पांथ(पथिक) तेरे समान मेरा पथिक प्रियतम वृक्षसमूहोंमें क्लेश पाता है. इस कालमें इससे अन्यत् मेरी क्या कुशल है जिससे मैं जीवित रहूं ? ॥

किमिति कृशासि कृशोदरि किं तव परकीयवृत्तान्तैः ॥
कथय तथापि मुदे मम कथयिष्यति पांथ तव जाया १४६

(कोई पथिक किसी नायिकासे प्रश्न करताहै कि) हे कृशोदरि ! तू इतनी कृश क्यों है ?(यह सुन नायिका उत्तर देती है) दूसरेके वृत्तांतसे तुझे क्या ? (पथिक फिर पूंछता है) तथापि मेरे विनोदार्थ कह; (उसका उत्तर वह देती है) हे पांथ ! (तेरे प्रश्नका उत्तर) तेरी स्त्री देगी (पथिकके प्रश्नका यह अभिप्राय

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

है कि यदि तू कृश होनेका कारण कहे तो मैं तेरे दुःखनिवारणार्थ प्रयत्न करूं, पथिकने यह जाना कि वह विरहसे कृशाङ्गि है; परंतु सती स्त्री दूसरे पुरुषसे अपना वृत्त नहीं कहती इससे नायिकाने उत्तर देना अनुचित समझी, जब पांथने अधिक अनुरोध किया तब नायिकाने अपने उत्तरसे यह सूचना की कि मेरी कृशताका कारण तेरी स्त्री कहेगी अर्थात् जिस प्रकार मेरा पति विदेशी होनेसे कामव्यथाने मुझे कृश किया है उसी प्रकार तेरे पथिक होनेसे तेरी स्त्रीको भी किया होगा। इसमें यह ध्वनि निकली है कि निज स्त्रीके कृशताकी औषधि न कर मुझसे कारण पूंछता है इससे तू महामूर्ख है) ॥

तुलामनालोक्य निजामखर्वं गौरांगि गर्वं न कदापि कुर्याः॥
लसंति नानाफलभारवत्यो लताः कियत्यो गहनांतरेषु१४७

हे गौरांगि! अपनी योग्यताको न देख बहुत गर्व न कर, वनप्रदेशमें नाना प्रकारके फलोंसे भारवती कितनी हीं लता शोभायमान हैं (तेरे पास तो कुचरूपी दो ही फल होते हैं परन्तु लताओंमें अनेक फल होते हैं और तिस पर भी वे अपने ऐश्वर्यका गर्व न कर सबको हाथ लगाने देती हैं यह भाव) ॥

इयमुल्लसिता मुखस्य शोभा परिफुल्लं नयनांबुजद्वयं ते। जलदालिभयं जगद्वितन्वन् कलितः कापि किमालि नीलमेघः॥ १४८ ॥

---

१ 'माल्यभारा' छन्द है।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

तेरे मुखकी शोभा उल्लसित और नयनकमलद्वय प्रफुल्लित हैं; हे आलि ! जगतको जलदपटलमय करनेवाले नीलमेघ [कृष्णचंद्र] को क्या कहीं देखा है ? (कृष्णको अवलोकन कर मुखमें प्रसन्नताके चिह्न प्रगट करनेवाली नायिकाके प्रति सखीकी उक्ति है) ॥

आसायं सलिलांतः सवितारमुपास्य सादरं तपसा ।
अधुनाऽब्जेन मनाक् तव मानिनि तुलना मुख-
स्याऽपि ॥ १४९ ॥

हे भामिनी ! सायंकालसे जलमें आदरपूर्वक तपस्यासे सूर्यनारायणकी उपासना कर अब अर्थात् प्रातःकालमें कमलने तेरे मुखकी कुछ तुलना पाई है (तेरा मुख कमलसे भी विशेष शोभायमान है यह भाव) ॥

अयि मंदस्मितमधुरं वदनं तन्वंगि यदि मनाक्कुरुषे॥
अधुनैव कलय शमितं राकारमणस्य हंत साम्रा-
ज्यम् ॥ १५० ॥

हे कृशांगि ! यदि (तू) किंचित् (अपने) मुखको मंद मुसुकानिसे मधुर करै (तो) चंद्रमाकी शोभा इसी समय शांत हुई जान पडै (तेरा मुख चन्द्रकी शोभाको जीतसकता है यह भाव) ॥

मधुरतरं स्मयमानः स्वस्मिन्नेवालपञ्छनैः किमपि॥
कोकनदयंस्त्रिलोकीमालंबनशून्यमीक्षते क्षीबः ॥१५१

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

मंद मुसुकानेवाला उन्मत्त पुरुष अपनेही मनमें धीरे धीरे कुछ कहता है (और) रक्तकमलके समान त्रिलोकीको आलंबनहीन देखता है (मत्तमनुष्यका वर्णन है यह आर्या 'शृंगारविलास' के योग्य तो नहीं जान पडती) ॥

मधुरसान्मधुरं हि तवाधरं तरुणि मद्वदने विनिवेशय॥
मम गृहाण करेण करांबुजं पप पतामि हहा भभ
भूतले ॥ १५२ ॥

हे तरुणि ! मधुसे अधिक मधुर अपने अधरको मेरे वदनपै स्थापनकर अर्थात् मुझे चुंबन दे और हाथसे हस्तकमलको पकड (देख) म म मैं भ भ भूमि पै ग ग गिरता हूं (मद्यपानसे मत्त हुए पुरुषकी उक्ति है, अपनेहीं करको करकमल कहना और शब्दोंका उच्चारण उन्मत्तताव्यंजक है) ॥

शतेनोपायानां कथमपि गतः सौधशिखरं सुधा-
फेनस्वच्छे रहसि शयितां पुष्पशयने ॥ विबोध्य
क्षामांगीं चकितनयनां स्मेरवदनां सनिःश्वासं
श्लिष्यत्यहह सुकृती राजरमणीम् ॥ १५३ ॥

अनेक उपायोंसे किसी प्रकार राजमंदिरके शिखरके ऊपर प्राप्त होकर 'अमृतके फेन समान स्वच्छ पुष्पशय्या पर एकांत स्थलमें सोनेवाली, कृशांगी, चकितनयनी, मंदमुसुकानिमुखी, राजरमणीको जागृत करके श्वास परित्याग करते हुए पुण्यवान् पुरुष आलिंगन करते हैं (ग्रंथकर्त्ता पंडितराज हीका तो वृत्तांत नहीं ?) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

गुंजंति मंजु परितो गत्वा धावंति संमुखम् ॥
आवर्तंते निवर्तंते सरसीषु मधुव्रताः ॥ १५४ ॥

सरोवरिणीमें सर्व मधुप मंजु गुंजार करते हैं, सन्मुख जाकर दौडते हैं, आते हैं और जाते भी हैं (इस श्लोकमें एक तो शरदृतुका समीपत्व सूचित होता है और दूसरे यौवनको शीघ्रही प्राप्त होनेवाली नायिकाके निकट जार पुरुषोंका आवागमन भी ध्वनित होता है) ॥

यथा यथा तामरसेक्षणा मया पुनः सरागं नितरां
निषेविता ॥ तथा तथा तत्त्वकथेव सर्वतो विकृत्य
मामेकरसं चकार सा ॥ १५५ ॥

ज्यों ज्यों फिर मैंने अनुरागपूर्वक भली भांति कमलनयनी (नायिका) सेई त्यों त्यों उसने ब्रह्मज्ञानकथाके समान मुझे सर्व वस्तुमात्रसे आकर्षण कर अर्थात् सबसे मेरा मन हटाय एक (शृंगार) रसमय किया ॥

हरिणीप्रेक्षणा यत्र गृहिणी न विलोक्यते ॥
सेवितं सर्वसंपद्भिरपि तद्भवनं वनम् ॥ १५६ ॥

जहां मृगलोचनी गृहिणी दृष्टिगोचर नहीं वह गृह संपत्तिसे सेवन किया गया भी वन है ॥

लोलालकावलिचलन्नयनारविंदलीलावशंवदितलो-
कविलोचनायाः ॥ सायाह्नि प्रणयिनो भवनं व्रजं-
त्याश्चेतो न कस्य हरते गतिरंगनायाः ॥ १५७ ॥

---

१ ' वंशस्थ ' छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

चंचल अलकपांक्ति (और) चपल नयनकमलोंकी लीलासे मनुष्योंके नेत्रोंको वश करनेवाली, सायंकाल प्रियतमके गृहको गमन करनेवाली कामिनीकी गति किसके मनको नहीं हरण करती ? ॥

दंतांशुकांतमरविंदरमापहारि सान्द्रामृतं वदनमेण-
विलोचनायाः ॥ वेधा विधाय पुनरुक्तमिवेंदुबिंबं
दूरीकरोति न कथं विदुषां वरेण्यः ॥ १५८ ॥

ज्ञानीजनोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मदेव हरिणनयनी (कामिनी) के दंतकी किरणोंसे मनोहर, कमलकी शोभाको हरण करनेवाले, अमृतके अनुपमस्थल मुखकी रचना कर चन्द्रबिंबको पुनरुक्तके समान क्यों नहीं दूर करता है ? (एकवार मृगाक्षीका मुखरूपी चंद्र निर्माण करके इस आकाशस्थ द्वितीय चंद्रमाको, जैसे कविलोग पुनरुक्तिको निकाल डालते हैं, क्यों नहीं दूर करता ? अर्थात् चंद्रमाका काम तो मुख करही रहा है फिर उसके उत्पन्न करनेसे लाभही क्या ? केवल एक वस्तुकी दूसरी प्रतिमामात्र है ॥

सानुकंपाः सानुरागाश्चतुराः शीलशीतलाः ॥
हरंति हृदयं हंत कांतायाः स्वांतवृत्तयः ॥ १५९ ॥

कामिनीके अंतःकरणकी दयाशील, अनुरागी, चतुर (और शीलशीतल, वृत्ति मेरे हृदयको हरण करती है ॥

अलकाः फणिशावतुल्यशीला नयनांता परिपुंखि-
तेषुलीलाः ॥ चपलोपमितां खलु स्वयं या बत
लोके सुखसाधनं कथं सा ॥ १६० ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

(जिसकी) अलकावलि भुजंगशावकके समान स्वभाववाली है; (जिसके) नेत्रकटाक्ष सपुंख बाणकी लीला (को अनुकरण करनेवाले) हैं; जो स्वयं विद्युल्लतासे उपमा दी जाती है हा! वह (नायिका) इस लोकमें किस प्रकार सुखकारक (हो सकती) है? ॥

वदने तव यत्र माधुरी सा हृदि पूर्णा करुणा च कोमलेऽभूत्॥ अधुना हरिणाक्षि हा कथं वा गतिरन्यैव विलोक्यते गुणानाम् ॥ १६१ ॥

हे मृगनयने! जिस वदनमें वह माधुरी, और कोमलहृदयमें (वह) पूर्ण करुणा रही, हाय! अब (वहीं) गुणोंकी अन्य अर्थात् विपरीत गति कैसे अवलोकन की जाती है? (प्रथमकी दया और वचनोंकी माधुर्य्यताके स्थानमें अब तूने वाक्टुता और हियकी कठोरता किस प्रकार अंगीकार की? यह भाव)॥

अनिशं नयनाभिरामया रमया संमदिनो मुखस्य ते॥ निशि निःसरदिंदिरं कथं तुलयामः कलयापि पंकजम्[२] ॥ १६२ ॥

सदैव नेत्रोंको आनंद देनेवाली शोभासे गर्वित तेरे मुखकी (एक) कलाकी भी[१] निशामें नाश होती है, सौंदर्य्यता जिसकी ऐसे कमलसे, हम किस प्रकार तुलना करैं? (मुख सदैव शोभायमान रहता है और कमल रात्रिमें मुकुलित होनेसे शोभाहीन-

---

१ शब्दार्थ भई, हुई। २ 'वैतालीय' छन्द है।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

होजाता है इससे दोनोंकी तुलना नहीं हो सकती यह भाव। उपमेय मुखसे उपमान कमलमें न्यूनता सूचित की इससे 'व्यतिरेक' अलंकार हुआ) ॥

अंगैः सुकुमारतरैः सा कुसुमानां श्रियं हरति ॥
विकलयति कुसुमबाणो बाणालीभिर्ममप्राणान् ॥ १६३

(उधर) वह (नायिका अपने) सुकुमारतर अंगोंसे पुष्पोंकी शोभाको हरण करती है, (इधर) पुष्पबाण (मन्मथ) शरसमूहसे मेरे प्राणोंको विकल करता है (पुष्प, मन्मथके बाण हैं उनकी शोभा कामिनीने हरण की इससे कामको उचित था कि उसे दंड देता परंतु वैसा न करके किसी दूसरेही पुरुषको वह विकल करता है इससे कारज असंगत हुआ अर्थात् जो क्रिया जहां होनी चाहिये थी वहां न होकर अन्य स्थलमें हुई। यह 'असंगति' अलंकार है) ॥

खिद्यति सा पथि यान्ती कोमलचरणा नितम्बभारेण ॥ खिद्यामि हन्त परितस्तद्रूपविलोकनेन विकलोऽहम् ॥ १६४ ॥

(उधर) मार्गमें गमन करती हुई वह कोमलचरणा (कामिनी) नितंब भारसे खेद पाती है और (इधर) आसमंताद्भागमें उसके स्वरूपको अवलोकन करनेसे विकल हुआ हाय ! मैं खेदित होता हूं ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

मथुरागमनोन्मुखे मुरारावसुभारार्तिभृतां व्रजांगनानाम् ॥ प्रलयज्वलनायते स्म राका भवनाकाशमजायताम्बुराशिः ॥ १६५ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके मथुरा गमनोन्मुख होनेसे, प्राणरूपी भारके दुःखको धारण करनेवाली व्रजनारियोंको, पौर्णिमाकी रात्रि प्रलयकालके अग्निसमान और गृहप्रदेश समुद्र समान हुआ ॥

केलीमंदिरमागतस्य शनकैरालीरपास्येंगितैः सुप्तायाः सरुषः सरोरुहदृशः संवीजनं कुर्वतः ॥ जानंत्याप्यनभिज्ञयेव कपटव्यामीलिताक्ष्या सखि श्रांतासीत्यभिधाय वक्षसि तया पाणिर्ममासंजितः॥ १६६॥

(मुझे) केलिमंदिरमें आया जान, धीरे धीरे सैनसे सखियोंको दूर करके सोई हुई सरोष कमलनयनीने व्यजन (पंखा) से पवन संचार करनेवाले मुझे जानकर भी अजानकी भांति, कपटसे अर्थात् झूठमूठ नेत्रोंको बंद किये ' हे सखि तू थकगई ऐसा कहके (अपने) हृदयमें मेरे करको स्थापन किया (नायिकाने अपना रोष नायकके द्वारा छुडाना चाहा, इससे सोनेका निमित्त लेकर व्यजन करते हुए पतिके हस्तको सखीके हस्तके मिषसे अपने उरस्थलमें लगाया, उधर नायकको भी मान त्याग करनेके लिये अधिक विनय करनेका प्रसंग भी न आया और अनायास अपना हाथ कामिनीके उरमें जानेसे कुचस्पर्शनका लाभभी हुआ. तात्पर्य दोनोंका मनमाना कार्य हुआ विना प्रयत्न नायिकाके उरस्थलका स्पर्श होनेसे 'प्रहर्षण' अलंकार हुआ)॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

मांथर्यमापगमनं सह शैशवेन रक्तं सहैव मनसाऽ-
धरबिंबमासीत् ॥ किंचाभवन्मृगकिशोरदृशो
नितंबः सर्वाधिको गुरुरयं सह मन्मथेन ॥ १६७ ॥

बाल्यावस्थाके साथ मृगशावलोचनीकी गमनगति मंद हुई अर्थात् जैसे शिशुताका धर्म मंद होता गया वैसे वैसे नायिका भी मंदगामिनी होती गई; मनके साथ ही बिंबाधर अरुण वर्ण-हुए ' (रक्तका अर्थ अनुराग और रक्तरंग दोनों होते हैं इससे यह कहा कि ज्यों ज्यों मन अनुरागी होता गया त्यों त्यों ओष्ठ भी रागी (अरुण) हुए और मन्मथ (कामदेव) के साथ नितंब सबसे अधिक गरुये हुए अर्थात् जैसे काम बढता गया तैसे नितंब भी पुष्ट होतेगये ॥

श्वासोऽनुमानवेद्यः शीतान्यंगानि निश्चला दृष्टिः ॥
न स्यात् सुभग कथेयं तिष्ठतु तावत्कथांतरं कथय १६८

(स्वयं महान् प्रीति रखनेवाली परन्तु नायककी अनिच्छित नायिकाके विरहजनित दुःखावस्थाका वर्णन कोई उसके प्रीतिपात्रसे करता है और कहता है कि वह इतनी कृश हो गई है कि) श्वास चलता है कि नहीं इसका ज्ञान अनुमानसे होता है, अंग सब शीतल हो गये हैं दृष्टि निश्चल है (इस प्रकारका वर्णन सुनकर नायकका हृदय द्रवीभूत तो न हुआ किंतु उलटा उसने यह उत्तर दिया कि (हे मित्र ! उसकी इस

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons- Dev Prayag. Digitized by eGangotri

कथाको रहने दो, और दूसरी वार्त्ता करो (ठीक है "एक तो प्राण देत इक ऊपर एक न जानत पीरा") ॥

पाणौ कृतः पाणिरिलासुतायाः सस्वेदकंपो रघुनंदनेन ॥ हिमाम्बुसंगानिलविह्वलस्य प्रभातपद्मस्य बभार शोभाम् ॥ १६९ ॥

रामचंद्रजीके द्वारा ग्रहण किये जानकीजीका स्वेद युक्त कंपित हस्त, तुषारकणसे मिश्रित पवनसे विह्वल किये-गये प्रातः कालके कमलकी शोभाको प्राप्त हुआ (हिमर्तुमें वायु संचारसे प्रभात समय कमलकी जैसी विह्वल दशा होजाती है वैसीही सीताजीके हस्तकी हुई यह भाव) ॥

अरुणमपि विद्रुमद्रुं मृदुलतरं चापि किसलयं बाले ॥ अधरीकरोति नितरां तवाधरो मधुरिमातिशयात् ॥ १७० ॥

हे बाले ! माधुर्य्याधिक्यसे तेरा अधर अरुण रंगके विद्रुम-द्रुम और मृदुलतर नूतन पत्रकोभी अत्यन्त नीच दशाको प्राप्त करताहै (विद्रुममें अरुणता है परंतु माधुर्य्य और कोमलता दोनों नहीं, और किसलयमें अरुणता और मृदुलता है, परंतु मधुरता नहीं, इस लिये कामिनीका ओष्ठ अरुणता, कोमलता और माधुर्य्य इन तीनों गुणोंसे पूर्ण होनेके कारण श्रेष्ठ हुआ) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

सुदृशो जितरत्नजालया सुरतांतश्रमबिंदुमालया ॥
आलिकेन च हेमकांतिना विदधे काऽपि रुचिः परस्परम् ॥ १७१ ॥

सुलोचनी (नायिका) की, सुरतके अंतमें उत्पन्न हुई रत्नजालको जीतनेवाली श्रमकणोंकी माला और सुवर्णवर्ण ललाट, परस्पर विचित्र शोभा देते हैं (एककी शोभा दूसरेसे कहा इससे 'अन्योन्य' अलंकार हुआ) ॥

परपूरुषदृष्टिपातवज्राहतिभीता हृदयं प्रियस्य सीता ॥ अविशत् परकामिनीभुजंगीभयतः सत्वरमेव सोऽपि तस्याः ॥ १७२ ॥

परपुरुषके दृष्टिपातरूपी वज्रप्रहारके भयसे सीताने प्रिय [रामचंद्र] जीके हृदयमें प्रवेश किया; (और) परस्त्रीरूपी भुजंगी (सर्पिणी) के भयसे उस (रामचंद्र) नेभी (सीताजी के हृदयमें) शीघ्रही प्रस्थान किया—(यह भी ' अन्योन्य ' अलंकार है) ॥

अंगानि दत्त्वा हेमांगि प्राणान् क्रीणासि चेन्नृणाम् ॥
युक्तमेतन्न तु पुनः कोणं नयनपद्मयोः ॥ १७३ ॥

हे हेमांगि ! अंगोंको देकर मनुष्योंके प्राण तू जो मोल लेती है सो उचित है परंतु फिर कमलनयनोंके कटाक्ष (उनके प्राणका क्रय करना योग्य) नहीं (नयनपद्मकोण अर्थात् अल्प कटाक्ष

---

१ 'वैतालीय' छंद है । २ 'माल्यभारा' छंद ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

देकर अमूल्य प्राण लेती है; तात्पर्य यह कि देती तो थोडा परंतु लेती बहुत है । इस श्लोकमें 'परिवृत्ति' अलंकार है) ॥

जितरत्नरुचां सदा रदानां सहवासेन परां मुदं ददानाम् ॥ विरसादधरीकरोति नासामधुना साहसशालि मौक्तिकं ते ॥ १७४ ॥

(हे नायिके !) रत्नोंकी कांतिको जीतनेवाले दंतोंके सदा सहवासके कारण, अत्यन्त आनन्द देनेवाली नासिकाको, द्वेषभावसे, तेरा साहस शालि (नासा) मौक्तिक इस समय नीचदशाको प्राप्त करता है, (रत्न जो मौक्तिकके सजातीय हैं उन्हें दन्तोंने अपनी कांतिसे परास्त किया और इन्ही दन्तोंकी निकटवर्ती नासिकाभी है इससे मौक्तिकको क्रोध हुआ और नासिकाभरण बनके उसके छेदन किये जानेका कारण हुआ यह भाव। नासाके अधोभागमें लटकनेसे दन्तोंके ऊपर मौक्तिक आजाता है इससे यदि ऐसा भी कहैं कि दंतोंके ऊपर पाद प्रहार करके, उसने अपने सजातियोंका पलटा लिया तो क्या अनुचित है ?) ॥

विलसत्याननं तस्या नासाग्रस्थितमौक्तिकम् ॥
आलक्षितबुधाश्लेषं राकेन्दोरिव मंडलम् ॥ १७५ ॥

नासिकाके अग्रभागमें है मौक्तिक जिसमें ऐसा उस (नायिका) का मुख; बुध नामक ग्रहसे आलिंगित अवलोकन किये गये पौर्णिमा संबंधीय चंद्रमंडलके समान शोभायमान है ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

निभाल्य भूयो निजगौरिमाणं मा नाम मानं सहसैव यासीः ॥ गृहे गृहे पश्य तवांगवर्णा मुग्धे सुवर्णावलयो लुठंति ॥ १७६ ॥

हे मुग्धे ! अपनी गौरिमा (गौरवर्ण) को देख सहसा गर्व न कर, देख तेरे अंगके वर्ण समान सुवर्णके आभरण घर घरमें लोटते हैं (अंगवर्ण उपमेयको सुवर्ण उपमानसे आदर न होनेसे 'प्रतीप' अलंकार हुआ) ॥

करिकुंभतुलामुरोजयोः क्रियमाणां कविभिर्विशृंखलैः॥ कथमालि शृणोषि सादरं विपरीतार्थविदो हि योषितः ॥ १७७ ॥

निरंकुश कवियोंके द्वारा कही गई गजगंडस्थलसे कुचद्वयोंके तुलनाकी कथा हे आलि ! तू सादर सुनती है, ठीक है, स्त्रियां विपरीत अर्थ जाननेवाली होती हैं (गजगंडस्थल अत्यंत उत्तुंग होनेके कारण यदि उनसे कुचोंकी उपमा दीगई तो यह सूचित हुआ कि नायिका प्रगल्भादशाको प्राप्त होगई अर्थात यौवन कालका अपगम समय निकट आया इस श्लोकमें नायिकासे सखी यह कहती है कि तू अभी उस अवस्थाको नहीं पहुँची अर्थात् अभी मुग्धाही है तस्मात् 'करिकुंभ' की उपमा तेरे विषयमें अयोग्य है इसमें 'अर्थान्तरन्यास' और 'प्रतीप' अलंकारका संकर है) ॥

---

१ 'उपजाति' छन्द ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

परिष्वजन् रोषवशात् तिरस्कृतः प्रियो मृगाक्ष्या शयितः पराङ्मुखः ॥ किं दुःखितोऽसाविति कांदिशीकया कदाचिदाचुम्ब्य चिराय सस्वजे ॥ १७८ ॥

आलिंगन करनेमें रोषसे तिरस्कार कियागया (और इसी कारण) पराङ्मुख (पीठ देकर) सोया हुआ प्रियतम क्या दुःखित है ? इस प्रकार मनमें अनुमान कर भयभीत हुई मृगनयनी (नायिका) ने अनायास (नायकको चुंबन करके चिरकाल पर्यन्त हृदयसे लगाया । विना प्रयत्न आलिंगनका इच्छित लाभ होनेसे ' प्रहर्षण ' अलंकार हुआ) ॥

चेलांचलेनाननशीतरश्मिं संवृण्वतीनां हरिदृश्वरीणाम् ॥ व्रजांगनानां स्मरजातकंपादकाण्डसंपातमियाय नीवी ॥ १७९ ॥

वस्त्रांचलसे मुखचन्द्रको छिपानेवाली (और श्रीकृष्णकी ओर अवलोकन करनेवाली व्रजनारियोंकी नीवी (कटिपट बंधन) कामाधिक्यसे उत्पन्न हुई कंपके कारण, अकस्मात् खुल गई (लज्जासे इधर मुखाच्छादन करना चाहा उधर नीवी खुलगई अर्थात् इच्छाके प्रतिकूल कार्य हुआ इस हेतु इस श्लोकमें ' विषाद ' अलंकार जानना) ॥

अधरेण समागमाद्रदानामरुणिम्ना पिहितोऽपि शुक्लभावः ॥ हसितेन सितेन पक्ष्मलाक्ष्याः पुनरुल्लासमवाप जातपक्षः ॥ १८० ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

सुलोचनी (नायिका) के दशनोंका शुक्लभाव, अधरोंके समागमसे अरुणताच्छादित भी, शुभ्रहास्यकी सहायतासे फिर उल्लासको प्राप्त हुआ (निज शुक्लधर्मको परित्याग संगतिके धर्मको ग्रहण करनेसे 'तद्गुण' अलंकार हुआ) ॥

सरसिरुहोदरसुरभावधरितबिंबाधरे मृगाक्षि तव ॥
वद वदने मणिरदने तांबूलं केन लक्षयेम वयम् ॥ १८१ ॥

हे मृगलोचनि ! कमलांतर्गत सौरभके समान सुगंधवाले बिंबाफलको तिरस्कार करनेवाले अधर और मणिवत् दशन धारण करनेवाले तेरे मुखमें तांबूलको हम किस प्रकार जान सकते हैं ? (नायिकाके मुखमें तांबूलजनित अरुणता न देख नायकने प्रश्न किया, उत्तरमें नायिकाने कहा कि मैंने तांबूल खाया है, परंतु कोई तांबूल लक्षण वदनमें न पानेसे नायक कहता है कि तांबूलसे अधरमें अरुणता आती है परंतु तेरे अधर तो सदैवही अरुण रहते हैं, तांबूल खानेसे मुख सुगंधित होता है परंतु तेरा वदन तो स्वभावहीसे सुगंधित है तांबूलसे दंत लाल हो जाते हैं परंतु तेरे दंत मणिमय है इससे उनका अरुण होना संभवही नहीं; अतएव भला फिर हम कैसे जाने कि तूने सत्यही तांबूल खाया है ? मुख और तांबूलके गुणकी सादृश्यता करनेसे 'मीलित अलंकार हुआ) ॥

शयिता सविधेऽप्यनीश्वरा सफलीकर्तुमहो मनोरथान् ॥
दयिता दयिताननांबुजं दरमीलन्नयना निरीक्षते ॥ १८२ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

नायकके समीप ही सोई हुई समर्थहीना कामिनी, मनोरथ सुफल करनेके लिये, किंचित् नेत्रोंको मुकुलित करती हुई पतिके मुखारविंदको देखती है (लज्जासे नयन भली भाँति नहीं खोलती और पतिकी ओर धीरे धीरे अवलोकन करके संभो-गेच्छा प्रकट करती है इससे 'मध्या' नायिका जानना) ॥

वदनारविंदसौरभलोभादिंदिरेषु निपतत्सु ॥
मय्यधरार्थिनि सुदृशो दृशो जयंत्यतिरुषा परुषाः १८३॥

इति श्रीमत्पंडितराजजगन्नाथविरचिते भामिनीविलासे
शृङ्गारो नाम द्वितीयो विलासः ॥ २ ॥

मुखारविन्दकी सौरभके लोभसे भ्रमरोंके (ओष्ठोंपै) गिरते मुझ अधरकी याचना करनेवाले अर्थात् चुम्बनार्थी पै रोषसे कुटिल हुए सुलोचनीके कटाक्ष जय पावैं ! (एक तो मुखके सुगंधके लोभी भ्रमर ही कष्ट दे रहे थे तिसपै नायकने अधरचुंबन चाहा फिर भला नायिकाकी दृष्टि वक्र क्यों न होवे ? परंतु कामुकोंको इस प्रकारकी परुष विलोकनभी सुखदात्री होती है इसीसे नायक उस चितवनिका भी उत्कर्ष चाहता है । 'जयंति' शब्दसे कविने, द्वितीय विलासके अलंकार किया) ॥

भामिनीविलासके शृंगार नामक द्वितीय विलासका
प्राकृत भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

श्रीः ।

अथ भामिनीविलासे ।

तृतीयः करुणाविलासः ।

दैवे पराग्वदनशालिनि हंत जाते याते च संप्रति दिवं प्रति बंधुरत्ने ॥ कस्मै मनः कथयितासि निजामवस्थां कः शीतलैः शमयिता वचनैस्तवाधिम् ॥ १ ॥

इस समय दैवके पराङ्मुख (विमुख) होने और बन्धु वर्गोंके स्वर्गलोक जानेसे हाय हे मन ! (अब तू) अपनी अवस्था (का वर्णन) किससे करेगा और शीतल वचनोंसे तेरे दुःखको कौन शांत करेगा ? ॥

प्रत्युद्गता सविनयं सहसा पुरेव स्मेरैः स्मरस्य सचिवैः सरसावलोकैः ॥ मामद्य मंजुरचनैर्वचनैश्च बाले हा लेशतोऽपि न कथं शिशिरीकरोषि ॥ २ ॥

हे बाले ! मदनकी सहायता करनेवाली मंद मुसुकानि और रसभरी चितवनिसे विनय पूर्वक (जो, तू मुझे) पहिले प्राप्त हुई; (सो, वही) आज, मधुर वचनोंकी रचनासे हाय मुझे किंचित् भी क्यों नहीं शीतल करती ? ॥

सर्वेऽपि विस्मृतिपथं विषयाः प्रयाता विद्याऽपि खेदकलिता विमुखीबभूव ॥ सा केवलं हरिणशावकलोचना मे नैवापयाति हृदयादधिदेवतेव ॥ ३ ॥

---

१ ' वसंततिलका छंद ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

सर्व विषयभी भूल गये (और) खेदयुक्ता (मेरी) विद्या भी विमुखी हुई अर्थात् उसका भी विस्मरण हुआ (परंतु) इष्ट-देवताके समान केवल वह मृगशावक लोचनी (कामिनी) मेरे हृदयसे दुर नहीं होती ॥

निर्वाणमंगलपदं त्वरया विशंत्या मुक्ता दयावति
दयाऽपि किल त्वयाऽसौ ॥ यन्मां न भामिनि निभा-
लयसि प्रभातनीलारविंदमदभंगिमदैः कटाक्षैः ॥ ४ ॥

हे दयावति भामिनी ! मोक्षपदको शीघ्रही गमन करनेवाली तूने यह (अपनी) दया भी त्यागी, जो (तू,) प्रातः कालके नीलकमलके मदको भंग करनेवाले कटाक्षोंसे मेरी ओर देखती (भी) नहीं ॥

धृत्वा पदस्खलनभीतिवशात् करं मे या रूढवत्यसि
शिलाशकलं विवाहे ॥ सा मां विहाय कथमद्य
विलासिनि द्युमारोहसीति हृदयं शतधा प्रयाति ॥ ५ ॥

हे विलासिनी ! पदस्खलन भयसे मेरे हस्तका अवलं-बन कर विवाहकालमें जो पाषाणशिलापै चढी उसने आज तुझे त्याग, स्वर्गको किस प्रकार आरोहण किया (ऐसे विचार हाय मेरे) हृदयको शतधा (विदीर्ण) करते हैं, ॥

निर्दूषणा गुणवती रसभावपूर्णा सालंकृतिः श्रवण-
मंगलवर्णराजिः ॥ सा मामकीनकवितेव मनोऽभिं-
रामा रामा कदापि हृदयान्मम नापयाति ॥ ६ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dey Prayag. Digitized by eGangotri

निर्दोष, गुणवती, रसभावपूर्ण अलंकारयुक्त, कोमल अक्षरवाली मेरी कविताके समान, (दुराचारादि) दोषरहित (गृहिणी) गुणसम्पन्न, (शृंगाररसानुयायि) हावभावपरिपूर्ण अंगाभरणसहित, कर्णानंददायक भाषण करनेवाली वह मनमोहिनी कामिनी कदापि मेरे हृदयसे दूर नहीं जाती ॥

चिंता शशाम सकलाऽपि सरोरुहाणामिंदोश्च बिंबमसमां सुषमामयासीत् ॥ अभ्युद्गतः कलकलः किल कोकिलानां प्राणप्रिये यदवधि त्वमितो गताऽसि ॥ ७ ॥

हे प्राणप्रिये ! ज्योंहीं तू इस लोकसे गई (त्योंही) कमलोंकी समस्त चिंता शांत हुई; चन्द्रबिंब महान् शोभाको प्राप्त हुआ, (और) कोकिलाओंका कलकल शब्द प्रगट हुआ (जबतक तू वर्तमान थी तब तक तेरी कोमलता देख कमल चिंतामें निमग्न थे कि तेरे अंग उनसे भी अधिक कोमल हैं; चन्द्रमा अपनेको तेरे सन्मुख तुच्छ समझता) था और तेरी वीणासदृशवाणीको श्रवण कर कोकिलाओंने शब्दही करना बंद कर दियाथा; परंतु तुझे स्वर्ग सिधारी जान अब उन सबको हर्ष प्राप्त हुआ है यह भाव) ॥

सौदामिनीविलसितप्रतिमानकांडे दत्त्वा कियंत्यपि दिनानि महेन्द्रभोगान् ॥ मंत्रोज्झितस्य नृपतेरिव राज्यलक्ष्मीर्भाग्यच्युतस्य करतो मम निर्गताऽसि ॥८॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

सौदामिनीके विलास समान अर्थात् क्षणमात्र ही रहनेवाले, सुरेन्द्रके सेवन योग्य महान् भोगोंको कुछ दिन पर्यन्त देकर (अकस्मात्) अकालहीमें, मुझ भाग्यहीनके हस्तसे मंत्रहीन अर्थात् राजधर्मविहीन राजाकी राज्यलक्ष्मीके समान (तू) निकल गई ॥

केनापि मे विलसितेन समुद्गतस्य कोपस्य किंनु
करभोरु वशंवदाऽभूः ॥ यन्मां विहाय सहसैव
पतिव्रताऽपि याताऽसि मुक्तिरमणीसदनं विदूरम् ॥ ९ ॥

हे करंभोरु ! क्या तू मेरे किसी अयोग्य विलाससे उत्पन्न हुये कोपके वश होगई, जो पतिव्रता होकर भी मुझे सहसा त्याग मुक्तिरूपी रमणीके दूरवर्ती गृहको चली गई (पतिव्रता स्त्री पतिके घरके बाहर पद भी नहीं धरती फिर तू दूरस्थ मुक्तिपदस्थलको कैसे गई यह भाव) ॥

काव्यात्मना मनसि पर्यणमन् पुरा मे पीयूषसार-
सरसास्तव ये विलासाः ॥ तानंतरेण रमणी रमणी-
यशीले चेतोहरा सुकविता भविता कथं नः ॥ १० ॥

हे सुशीले ! अमृतरससे भी सरस जो तेरे विलास प्रथम काव्यरूप होकर मेरे मनमें प्रवेश करते थे उनके बिना (अब) मेरी कविता, मनोहारिणी (और) रमणीय कैसे होवेगी ? (तेरे हाव, भाव, चेष्टाओंको देख मैं काव्यमें उनका वर्णन करता था जिससे श्लोक सरस और प्रशंसनीय होते थे परंतु अब

---

१ हस्तीके शुंडके समान है जंघा जिसकी एसी ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

तेरे न रहनेसे मेरी कवितामें उन गुणोंका होना संभव नहीं यह भाव) ॥

या तावकीनमधुरस्मितकांतिकांते भूमंडले विफ-
लतां कविषु व्यतानीत् ॥ सा कातराक्षि विलयं
त्वयि यातवत्यां राकाऽधुना वहति वैभवमिंदि-
रायाः ॥ ११ ॥

हे चपलनयने ! तेरी मधुर मुसुकानिकी कांतिसे शोभायमान भूमंडलमें जो पौर्णिमा कवियोंकी विषयमें निष्फलताको प्राप्त होती भई, वह तेरे स्वर्गवासिनी होनेसे अब लक्ष्मीके वैभवको धारण करती है; (पौर्णिमाका शुभ्रत्व प्रशंसनीय है परंतु तेरी स्मित उससे भी शुभ्र होनेके कारण कविजन शुभ्रताके प्रसंगमें उसीका वर्णन करतेथे, पौर्णिमाका नहीं परंतु अब तू नहीं रही, इससे पौर्णिमा अत्यानंदित हो महान् वैभवको प्राप्त हुई है यह भाव) ॥

मंदस्मितेन सुधया परिषिच्य या मां नेत्रोत्पलैर्वि-
कसितैरनिशं समीजे ॥ सा नित्यमंगलमयी गृह-
देवता मे कामेश्वरी हृदयतो दयिता न याति॥ १२ ॥

सुधारूपी मंदमुसुकानिसे सींच जिसने नेत्ररूपी विकसित कमलोंसे मेरा निरंतर पूजन किया वह नित्यमंगलकारिणी गृहदेवता; सर्वकामपूर्णकर्त्री, कामिनी मेरे हृदयसे नहीं जाती ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

भूमौ स्थिता रमण नाथ मनोहरेति संबोधनैर्य-
माधिरोपितवत्यसि द्याम् ॥ स्वर्गं गता कथमिव
क्षिपसि त्वयेणशावाक्षि तं धरणिधूलिषु मामि-
दानीम् ॥ १३ ॥

हे मृगशावकलोचने ! भूतलमें स्थित रहते 'हे रमण' 'हे नाथ' 'हे मनोहर' इस प्रकारके संबोधनोंसे जिसे (तूने) सुर-लोक पै आरोहण कराया अर्थात् अमरावतीके तुल्य सुख दिया, उसी मुझको अब (तू) स्वर्गमें जाय धरणीतल धूलिमें किस प्रकार डालती है ॥

लावण्यमुज्ज्वलमपास्ततुलं च शीलं लोकोत्तरं
विनयमर्थमयं नयं च ॥ एतान् गुणानशरणानथ
मां च हित्वा हा हंत सुन्दरि कथं त्रिदिवं गताऽसि॥१४

हे सुंदरि ! उज्ज्वल लावण्य, अतुल शील, लोकोत्तर विनय, अर्थपूरित नीति, इन शरणहीन गुणोंको और मुझको (भी) छोड हाय ! (तू) किस प्रकार स्वर्गलोकको गई ? (उपरोक्त सर्व गुण तुझमें थे; परन्तु अब तेरे न रहनेसे वे अनाथ हो गये, कारण; उनकी शरणदात्री एक तूही थी यह भाव) ॥

कांत्या सुवर्णवरया परया च शुद्ध्या नित्यं स्विकाः
खलु शिखाः परितः क्षिपंतीम् ॥ चेतोहरामपि
कुशेशयलोचने त्वां जानामि कोपकलुषो दहनो
ददाह ॥ १५ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे कमलनयने ! श्रेष्ठ सुवर्णके समान (तेरी) कांति और परम शुद्धिसे, अपनी शिखा सर्व ओर पराभवित (देख,) तुझ मनोहारिणीको भी, मेरे जान अग्निने क्रोधित होकर दहन किया।(तेरी कांति और शुद्धि अपनी ज्वालासे भी अधिक देख अग्निको रोष उत्पन्न हुआ इसीसे उसने तुझे दग्ध किया यह भाव) ॥

कर्पूरवर्तिरिव लोचनतापहंत्री फुल्लांबुजस्त्रगिव कंठसुखैकहेतुः ॥ चेतश्चमत्कृतिपदं कवितेव रम्या नम्या नरीभिरमरीव हि सा विरेजे ॥ १६ ॥

कर्पूरकी वर्त्तिका (बत्ती) के समान नेत्रोंके तापको हरण करनेवाली, प्रफुल्लित कमलमाला तुल्य कंठको सुख देनेवाली, चित्तमें चमत्कार उत्पन्न कहनेवाली कविताके सदृश रमणीय, वह नतगात्री (नायिका) स्त्रियोंमें देवांगनाके समान शोभायमान थी ॥

स्वप्नांतरेऽपि खलु भामिनि पत्युरन्यं या दृष्टवत्यसि न कंचन साभिलाषम् ॥ सा संप्रति प्रचलिताऽसि गुणैर्विहीनं प्राप्तं कथं कथय हंत परं पुमांसम् ॥१७॥

हे भामिनी ! जिस (तू) ने; स्वप्नमें भी किसी अन्यपतिको अभिलाष सहित न अवलोकन किया, सो (वही) अब गुणहीन पर पुरुषको प्राप्त होनेके लिये कैसे गई ? (यह तूही कह. (" गुणैर्विहीनं " और " परं पुमांसम् " में श्लेष है, गुणविहीन पर पुरुष और निर्गुण परब्रह्म दोनों अर्थ व्यंजक है)॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

दयितस्य गुणाननुस्मरंती शयने संप्रति या विलो- कितासीत् ॥ अधुना किल हंत सा कृशांगी गिर- मंगीकुरुते न भाषिताऽपि[1] ॥ १८ ॥

प्राणत्याग समय सेज पर जो प्रियतमके गुणोंका स्मरण करते हुई देखी गई हाय ! अब वही कृशांगी भाषण करनेसे भी नहीं बोलती ॥

रीतिं गिराममृतवृष्टिकरीं तदीयां तां चाकृतिं कवि- वरैरभिनंदनीयाम् ॥ लोकोत्तरामथ कृतिं करुणा- रसार्द्रां स्तोतुं न कस्य समुदेति मनःप्रसादः ॥ १९ ॥

इति श्रीमत्पंडितराजजगन्नाथविरचिते भामिनीविलासे करुणा नाम तृतीयो विलासः ॥ ३ ॥

अमृत वृष्टि करनेवाली उसकी वाणीकी रीतिका, कविवरोंसे अभिनंदित उसकी आकृतिका, करुणारसार्द्र उसकी परमोत्तम कृतिका स्तवन करनेको किसका चित्त नहीं आनंदित होता ? ॥

भामिनी विलासके करुणा नाम तृतीय विलासका प्राकृत भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥

---

१ 'मालयभारा' छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

अथ भामिनीविलासे

चतुर्थः शांतो विलासः ।

विशालविषयाटवीवलयलग्नदावानलप्रसृत्वरशिखा-
वलीविकलितं मदीयं मनः। अमंदमिलदिंदिरे
निखिलमाधुरीमंदिरे मुकुन्दमुखचंदिरे चिरमिदं
चकोरायताम् ॥ १ ॥

विशाल विषयरूपी वनमंडलमें लगेहुए दावानलकी प्रसारपाने-वाली ज्वालाकी पंक्तियोंसे विकलित, यह मेरा मन, परम शोभा-यमान (और) अखिल माधुर्यताके मंदिर श्रीकृष्ण भगवान्के मुखरूपी चंद्रमामें, चिरकाल पर्य्यन्त चकोरके धर्मका आचरण करे ॥

अये जलधिनंदिनीनयननीरजालंबन ज्वलज्ज्वलन
जित्वरज्वरभरत्वराभंगुरम् ॥ प्रभातजलजोन्नमद्गरि
मगर्वसर्वंकषैर्जगत्त्रितयरोचनैः शिशिरयाशु मां
लोचनैः ॥ २ ॥

हे लक्ष्मीनयनकमलाश्रय ! [भगवन्—नारायण] प्रातः-काल कमलके महान् गर्वको हरण करनेवाले (अर्थात् कमलसे भी विशेष शोभायमान) और त्रैलोक्यको आनंद देनेवाले अपने नयनोंसे, प्रज्वलित अग्निको जीतनेवाले ज्वरके भारसे मुझ भंगशीलको शीघ्र शीतल करो ॥

---

१ 'पृथ्वी छंद है।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

स्मृताऽपि तरुणातपं करुणया हरंती नृणामभंगु-
रतनुत्विषां वलयिता शतैर्विद्युताम् ॥ कलिंदगि-
रिनंदिनीतटसुरद्रुमालंबिनी मदीयमतिचुंबिनी
भवतु काऽपि कादंबिनी ॥ ३ ॥

मनुष्योंके स्मरणमात्रके करतेही करुणासे प्रचंड तापको हरण करनेवाली, अक्षय है अंगकी कांति जिनकी ऐसी अनेक विद्युल्लताओंसे वेष्टित, यमुनातटके श्रेष्ठ वृक्षोंका आलंबन करनेवाली, विचित्र मेघमाला, मेरी बुद्धिका विषय होवे (मेरा मन इस मेघमालाका ध्यान किया करै यह भाव) इस श्लोकमें मेघमालाको कृष्णमूर्ति मान उसकी आधिक्यता दिखाई हैः—मेघमालाके जल देनेसे सूर्यका आतप शांत होता है परन्तु कृष्णमूर्तिरूपी मेघमालाके स्मरण मात्रसे ताप नष्ट होते हैं; मेघमालाके विद्युल्लताओंकी कांति भंगशील है परन्तु कृष्णचन्द्रके अंगकी कांति सदैव स्थिर है; मेघमाला आकाशका आश्रय लेती है, कृष्णमूर्ति यमुनाकूलके परम पावन कदंबादि तरुवरोंका अवलंब करती है ॥

कलिंदगिरिनंदिनीतटवनांतरं भासयन् सदा पथि
गतागतश्रमभरं हरन् प्राणिनाम् ॥ लतावलिशता-
वृतो मधुरया रुचा संभृतो ममाशु हरतु श्रमानति-
तरां तमालद्रुमः ॥ ४ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

यमुनाकूलके उपवनमें प्रकाशवान् मनुष्योंके, मार्गसंभूत गतागत श्रम भारको हरनेमें (सदैव) समर्थ, अनेक लताओंसे आच्छादित मनोहर कांति संयुक्त तमाल तरुवर मेरे महान् परिश्रमको शीघ्रही हरण करै (इसमें तमाल वृक्षकी कृष्णसे साम्यता की है:—यमुनाके वनांतरोंमें दोनों [कृष्ण- तमालद्रुम] दीप्तिमान हैं, तमाल पथिकोंके मार्गजनित श्रमको दूर करता है, कृष्ण प्राणियोंके जन्म मरणको नाश करते हैं, तमालको लताओंने आवृत किया है, कृष्णचन्द्रको गोपकन्याओंने, कांतिमान् दोनों हीं हैं) ॥

जगज्जालं ज्योत्स्नामयनवसुधाभिर्जटिलयञ्जनानां संतापं त्रिविधमपि सद्यः प्रशमयन् ॥ श्रितो वृंदारण्यं नतनिखिलवृंदारकवृतो मम स्वांतर्ध्वान्तं निरयतु नवीनो जलधरः ॥ ८ ॥

चन्द्रिकारूपी नूतन अमृतसे संसारको परिपूर्ण करनेवाला, मनुष्योंके त्रिविध संतापको शीघ्रही शांत करनेवाला, वृंदावनवासी, (मस्तक) नम्र कियेहुये अखिल देवगणोंसे युक्त नूतन मेघरूपी श्रीकृष्ण भगवान् मेरे अंतःकरणके अंधकारको नाश करैं ॥

ग्रीष्मचंडकरमंडलभीष्मज्वालसंतरणतापितमूर्तेः॥
प्रावृषेण्य इव वारिधरो मे वेदनां हरतु वृष्णिवरेण्यः॥९॥

---

१ 'स्वागता' छन्द है।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण भगवान्, वर्षा ऋतु सम्बन्धी मेघवत् ग्रीष्मर्तुके सूर्य मंडलकी अत्युग्र ज्वाला समान संसारजनित तापसे मुझ संतप्त हुएकी वेदना हरण करै ॥

अपारे संसारे विषमविषयारण्यसरणौ मम भ्रामं भ्रामं विगलितविरामं जडमतेः ॥ परिश्रांतस्यायं तरणितनयातीरनिलयः समंतात्संतापं हरिनवतमालस्तिरयतु ॥ ७ ॥

इस अपार संसारके विषम विषयरूपी अरण्यमार्गमें परिभ्रमण करनेवाले, विश्रामहीन, जडबुद्धि, मुझ श्रमितके समस्त संताप कृष्ण स्वरूप सदृश यमुना तीरका यह तमालवृक्ष नाश करै ॥

आलिंगितो जलधिकन्यकया सलीलं लग्नः प्रियंगुलतयेव तरुस्तमालः ॥ देहावसानसमये हृदये मदीये देवश्चकास्तु भगवानरविंदनाभः ॥ ८ ॥

जैसे तमालवृक्षसे प्रियंगुलता लग्न होजाती है वैसेही प्रेमपूर्वक जलधिकन्या (लक्ष्मी) से आलिंगन किया गया भगवान् कमलनाभ नारायण प्राणप्रयाणके समय मेरे हृदयमें प्रकाश करै) ॥

नयनानंदसंदोहतुंदिलीकरणक्षमा ॥
तिरयत्याशु संतापं कापि कादंबिनी मम ॥ ९ ॥

नेत्रोंके आनंदसमूहको अधिकाधिक बढानेमें समर्थ मेघमालारूपी अनिर्वचनीय कृष्णमूर्ति मेरे संतापको शीघ्रही नाश करै ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri .

वाचा निर्मलया सुधामधुरया यां नाथ शिक्षाम-
दास्तां स्वप्नेऽपि न संस्मराम्यहमहंभावावृतो नि-
स्त्रपः ॥ इत्यागःशतशालिनं पुनरपि स्वीयेषु मां
बिभ्रतस्त्वत्तो नास्ति दयानिधिर्यदुपते मत्तो न
मत्तोऽपरः ॥ १० ॥

हे नाथ ! सुधाके समान मधुर और निर्मल (श्रुतिरूपी) वाणीसे (तूने) जो शिक्षा दी, उसे मैं निर्लज्ज और अहंकार-युक्त होत्साता स्वप्नमें भी स्मरण नहीं करता, ऐसे अनेक अप-राध करनेवाले मुझे फिर भी तू अपने जनों (की गिनती) में गिनता है, तस्मात् हे यदुपते ! तुझसे (अधिक दूसरा) दयालु नहीं (और) मुझसे (अधिक दूसरा) उन्मत्त नहीं है ॥

पातालं व्रज याहि वा सुरपुरीमारोह मेरोः शिरः
पारावारपरंपरां तर तथाप्याशा न शांतास्तव ॥
आधिव्याधिपराहतो यदि सदा क्षेमं निजं वांछसि
श्रीकृष्णेति रसायनं रसय रे शून्यैः किमन्यैः श्रमैः॥ ११

पातालमें प्रवेश कर, वा इन्द्र लोकको प्राप्त हो, वा सुमेरुपै आरोहण कर, वा सप्तसमुद्रके पार जा, परन्तु तेरी आशा शांत नहीं, (इससे) आधिव्याधिसे पराहतहुए (हे मन !) यदि तू सदाके लिये अपनी कुशल चाहता है तो श्रीकृष्णरूपी रसायनको सेवन कर वृथा अन्य परिश्रममें कुछ अर्थ नहीं ॥

गणिकाजामिलमुख्यानवता भवता बताहमपि ॥
सीदन्भवमरुगर्ते करुणामूर्ते न सर्वथोपेक्ष्यः ॥ १२ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे करुणामूर्ते भगवन् ! गणिका और अजामिलादिक (महान् पातकियों) को उद्धार करनेवाले तुझे, संसाररूपी मरुस्थलीमें व्याकुल हुआ, हाय ! जो मैं उसकी सर्वथा उपेक्षा करनी योग्य नहीं ॥

विदित्वेदं दृश्यं विषमारिपुदुष्टं नयनयोर्विधायांतर्मु-
द्रामथ सपदि विद्राव्य विषयान्॥ विधूतांतर्ध्वान्तो
मधुर मधुरायां चिति कदा निमग्नः स्यां कस्यां
चन नवनभस्यांबुदरुचो ॥ १३ ॥

इस संसारको विषमशत्रुवत् दुष्ट जान, नेत्रोंकी मुद्राको अंतःकरणमें स्थापित कर, और (समस्त) विषयोंको शीघ्र ही त्याग, अज्ञानान्धकारविगत होतसाता नवीनमेघतुल्यकांति-वाली (श्रीकृष्णकी) अत्यंत मधुर व अवर्णनीय चैतन्यतामें कब निमग्न होऊंगा ? ॥

मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतं निपीतं पयः
स्वर्यातेन सुधाप्यधायि कतिधा रंभाधरः खंडितः ॥
सत्यं ब्रूहि मदीय जीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता
कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः ॥१४॥

हे मम जीव ! पुनः पुनः संसारमें भ्रमण करके तूने द्राक्षा-का स्वाद लिया, शर्करा खाई, उत्तम दुग्ध पिया, स्वर्गमें सुधा-का भी आस्वादन किया, अनेक वार देवांगनाधर खंडित किये परंतु सत्य कहना, " कृष्ण " इन अक्षरोंकासा मधुर उद्गार कहीं देखा ? अर्थात् कहीं नहीं ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

वज्रं पापमहीभृतां भवगदोद्रेकस्य सिद्धौषधं मिथ्या-
ज्ञाननिशाविशालतमसस्तिग्मांशुबिंबोदयः ॥ क्रूर-
क्लेशमहीरुहामुरुतरज्वालाजटालः शिखी द्वारं
निर्वृतिसद्मनो विजयते कृष्णेति वर्णद्वयम् ॥ १५ ॥

पापपर्वतको वज्र, संसारसम्बन्धी महान् रोगकी सिद्ध औषध, मिथ्याज्ञानरूपी रात्रीके विशाल अंधकारको सूर्यबिंबोदय, प्रचंड क्लेशरूपी वृक्षको अत्युग्र ज्वालासे प्रज्वलित अग्नि, मोक्षमंदिरका द्वार ' कृष्ण ' ऐसे ये वर्णद्वय विजय पावैं ॥

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन्
वृंदं कोऽपि गवां नवांबुदनिभो बंधुर्न कार्यस्त्वया ॥
सौंदर्य्यामृतमुद्गिरद्भिरभितः संमोह्य मंदस्मितैरेष
त्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति ॥ १६ ॥

रे मन ! यह मैं तेरे हितकी कहता हूं वृन्दावनमें गोवृन्दों-को चरानेवाले नूतनमेघवर्ण (श्रीकृष्ण) को तू स्नेही कर वह सौन्दर्य्यामृतको आसमंताद्भागमें बरसानेवाली (अपनी) मंद-मुसुकानिसे, तुझे मोहित करके तेरी प्रिय विषयवासनाओंको शीघ्रही नाश करैगा ॥

अव्याख्येयां वितरति परां प्रीतिमंतर्निमग्ना कंठे
लग्ना हरति नितरां यांतरध्वांतजालम् ॥ तां
द्राक्षाद्यैरपि बहुमतां माधुरीमुद्गिरंतीं कृष्णेत्याख्यां
कथय रसने यद्यसि त्वं रसज्ञा ॥ १७ ॥

---

१ ' मंदाक्रांता ' छन्द है ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

हे जिह्वे ! यदि तू रसज्ञा (रसको जाननेवाली) है तो हृदयमें निमग्न होनेसे जो अवर्णनीय परमोत्कृष्ट प्रीतिको देती है (और) कंठमें लग्न होनेसे अन्तरके अंधकार समूहको भली-भाँति नाश करती है उस द्राक्षादि पदार्थोंसे भी विशेष माधुर्यताको देनेवाली 'कृष्ण' इस आख्याको कह ॥

संत्येवास्मिञ्जगति बहवः पक्षिणो रम्यरूपास्तेषां
मध्ये मम तु महती वासना चातकेषु ॥ यैरध्यक्षैरथ
निजसखं नीरदं स्मारयद्भिश्चित्तारूढं भवति किमपि
ब्रह्म कृष्णाभिधानम् ॥ १८ ॥

इस संसारमें अनेक रम्यरूप पक्षी हैं; परन्तु उन सबमें मेरी विशेषवासना चातकमें है, कारण, उसके द्वारा उसके मित्र मेघका स्मरण होनेसे कृष्णनामक ब्रह्म चित्तमें आरूढ होता है ('स्मरण' अलंकार है) ॥

विष्वद्रीच्या भुवनमखिलं भासते यस्य भासा सर्वा-
सामप्यहमिति विदां गूढमालंबनं यः ॥ तं पृच्छंति
स्वहृदयमनावेदिनो विष्णुमन्यानन्यायोऽयं शिव
शिव नृणां केन वा वर्णनीयः ॥ १९ ॥

जिसकी जगद्व्यापिनी भाससे अखिललोक भासमान हैं और सर्व पदार्थोंमें 'मैं' इस प्रकारके अहंकारिक शब्दकी जाननेवालोंका जो गूढाश्रय है; ऐसे उस विष्णु भगवान्‌को, अपने हृदयका भेद न जाननेवाले मनुष्य, दूसरोंसे पूछते हैं शिव ! शिव ! प्राणियोंका यह अन्याय कौन वर्णन कर सकता

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

है ? (भगवान् अपने हृदयमें वर्तमान होकर तत्संबंधी प्रश्न दूसरेसे करना आश्चर्य्यजनक है यह भाव । इस श्लोकमें विपरीत फलकी इच्छाका वर्णन किया इससे ' विचित्र ' अलंकार हुआ) ॥

सेवायां यदि साभिलाषमसि रे लक्ष्मीपतिः सेव्यतां चिंतायामसि सस्पृहं यदि तदा चक्रायुधश्चिंत्यताम् ॥ आलापं यदि कांक्षसि स्मरारिपोर्गाथा तदालप्यतां स्वापं वाञ्छसि चेन्निरर्गलसुखे चेतः सखे सुप्यताम् ॥ २० ॥

हे मन ! हे मित्र ! यदि सेवा करनेकी अभिलाषा होवै तो लक्ष्मीपति (विष्णु भगवान्) की सेवा कर, यदि चिंतन करनेकी स्पृहा होवै तो चक्रायुध (नारायण) का चिंतन कर, यदि कथन करनेकी इच्छा होवे तो शंकरकी कथा कथन कर, यदि शयन करनेकी आकांक्षा होवै तो ब्रह्मानंदमें शयन कर ॥

भवग्रीष्मप्रौढातपनिवहसंतप्तवपुषो बलादुन्मूल्यं द्राङ्निगडमविवेकव्यतिकरम् ॥ विशुद्धेऽस्मिन्नात्मामृतसरसि नैराश्यशिशिरे विनाहंते दूरीकृतकलुषजालाः सुकृतिनः ॥ २१ ॥

संसाररूपी ग्रीष्मर्तुके प्रचंड आतपसमूहसे संतप्त हुए प्रवर्द्धनीय अविवेकरूपी बंधनको बलसे शीघ्रही तोड, पातकजालोंको दूर कर; निराशतासे शीतल कियेगये इस विशुद्धात्मामृततडागमें पुण्यवान् जन स्नान करते हैं ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

बंधोन्मुक्त्यै खलु मखमुखान् कुर्वते कर्मपाशान्
अंतः शांत्यै मुनिशतमतानल्पचिंतां भजंति ॥
तीर्थे मज्जंत्यशुभजलधेः पारमारोढुकामाः सर्वं
प्रामादिकमिह भवभ्रांतिभाजां नराणाम् ॥ २२ ॥

बंधन मुक्त होनेके हेतु कर्मरूपी पाशवाली यज्ञादि क्रियाओंमें प्रवृत्ति, अंतःकरणकी शांतिके निमित्त अनेक मुनियोंके (कहे गये) अनल्प चिंतनका भजन, (संसाररूपी) अशुभ समुद्रके पार जानेके अर्थ तीर्थोंमें मज्जन, इन सब (साधनोंका करना,) इस लोकमें जगत् भ्रांति भ्रमित मनुष्योंकी भूल है (इष्ट पदार्थके प्राप्त्यर्थ अनिष्ट कार्य करना वर्णन किया इससे 'विचित्र' अलंकार हुआ) ॥

प्रथमं चुम्बितचरणा जंघाजानूरुनाभिहृदयानि ॥
आश्लिष्य भावना मे खेलतु विष्णोर्मुखाब्जशोभायाम् ॥ २३

प्रथम चरणोंको चुंबन कर (पश्चात्) जंघा, जानु, ऊरु, नाभि (और) हृदयको आलिंग्य, विष्णु भगवान्के मुखकमलकी शोभामें मेरा ध्यान लगे (चरणोंके चुबंन और जंघा, जानु, इत्यादिकके आलिंगनका तात्पर्य उन उन अंगोंका मनमें चिंतन करना है) ॥

मलयानिलकालकूटयो रमणीकुंतलभोगिभोगयोः ॥
श्वपचात्मभुवोर्निरंतरा मम भूयात्परमात्मनि स्थितिः ॥ २४

---

१ 'वियोगिनी' छंद ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

मलयाचल पवन और विषमें स्त्रीकेशपाश और सर्पशरीरमें, स्वपच और ब्राह्मणमें मेरी निरंतर समान बुद्धि होवै ॥

निखिलं जगदेव नश्वरं पुनरस्मिन्नितरां कलेवरम् ॥
अथ तस्य कृते कियानयं क्रियते हंत जनैः परिश्रमः २५

समस्त संसार नाशवंत हैं फिर इसमें शरीर तो अत्यंतही (क्षणभंगुर) है; हाय ! उसीके निमित्त मनुष्य कितना परिश्रम करते हैं ॥

प्रतिपलमखिलाँल्लोकान्मृत्युमुखं प्रविशतो निरी-
क्ष्यापि ॥ हा हंत किमिति चित्तं विरमति नाद्यापि
विषयेभ्यः ॥ २६ ॥

प्रति क्षण अखिल जनोंको मृत्युमुखमें प्रवेश करतेहुए देखकर भी, हाय ! विषयवासनाओंसे चित्त अद्यापि नहीं विलग होता, यह क्या ? ॥

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मीरुपरि पतंत्वथवा
कृपाणधाराः ॥ अपहरतुतरां शिरः कृतांतो मम
तु मतिर्न मनागपैतु धर्मात् ॥ २७ ॥

(चाहे) राज्यलक्ष्मी सत्वर नष्ट हो जावै, चाहे कृपाणधारैं ऊपरसे गिरैं, (चाहे) कृतांत शिरश्छेदन करै, परंतु मेरा मन किंचित् भी धर्मसे न चलै ॥

अपि बहलदहनजालं मूर्ध्नि रिपुर्मे निरंतरं धमतु ॥
पातयतु वासिधारामहमणुमात्रं नकिंचिदपभाषे ॥ २८ ॥

---

१. 'पुष्पिताग्रा' छंद ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

शत्रु मेरे मस्तकपै (चाहे) प्रचंड अग्निसमूहको भी निरंतर जलावैं अथवा खड्गधार प्रहर करैं (परंतु) मैं किंचिन्मात्रभी अपभाषण न करूं (महान् कष्ट होनेपै भी अपशब्द मुखसे न निकलना चाहिये यह भाव) ॥

तरणोपायमपश्यन्नपि मामक जीव ताम्यसि कुतस्त्वम् ॥
चेतःसरणावस्यां किं नागंता कदापि नंदसुतः ॥ २९ ॥

हे मम जीव! (भवसागर) से पार होनेका उपाय न करके भी (वृथा) तू क्यों संतप्त होता है? क्या इस मनरूपी मार्गमें नंदसुवन श्रीकृष्ण भगवान् कभी न आवैंगे? (धैर्य धर और श्रीकृष्णस्मरण कर यह भाव) ॥

श्रियो मे मा संतु क्षणमपि च माद्यद्गजघटामदभ्राम्यद्भृंगावलिमधुरझंकारसुभगाः ॥ निमग्नानां यासु द्रविणमादिराघूर्णितदृशां सपर्यासौकर्यं हरिचरणयोरस्तमयते ॥ ३० ॥

उन्मत्त गजेंद्र घटाओंके (गंडस्थलस्खलित) दानोदक पै भ्रमण करनेवाले मधुकरसमूहके मधुररवसे शोभायमान संपत्तियां मुझे न प्राप्त होवैं; क्योंकि, उन (संपत्तियों) में निमग्न होने (और) द्रव्यरूपी मदिरासे भ्रमितनेत्र हो जानेसे, हरिचरणके पूजनका सुकर अस्त हो जाता है (ऐश्वर्यसंपन्नत्व, हरिभक्तिका बाधक है यह भाव) ॥

किं निःशंकं शेषे शेषे वयसः समागतो मृत्युः ॥
अथवा सुखं शयीथा निकटे जागर्ति जाह्नवी जननी ३१

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

(हे जीव !) निःशक क्यों शयन करता है ? (क्या तू नहीं जानता कि) जरावस्थामें मृत्युका समागम होता है; अथवा (जो सोना ही है तो) निकटही भागीरथी जननी वर्तमान है (उसके तीर पै) सुखसे शयन कर) ॥

संतापयामि किमहं धावंधावं धरातले हृदयम् ॥
अस्ति मम शिरसि सततं नंदकुमारःप्रभुःपरमः॥ ३२॥

पृथ्वीपै धाय धाय मैं क्यों हृदयको संतापित करता हूँ ? मेरे (तो) शिर (ही) पै परम प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र संतत निवास करते हैं ॥

रेरे मनो मम मनोभवशासनस्य पादांबुजद्व-
यमनारतमानमंतम् ॥ किं मां निपातयासि संसृति-
गर्तमध्ये नैतावता तव गमिष्याति पुत्रशोकः ॥ ३३॥

हे मन्मन ! मनोभव (मनसे है उत्पत्ति जिसकी अर्थात् कामदेव) के शासन करनेवाले शंकरके युगल चरण कमलोंको निरन्तर नमस्कार करनेवाले मुझे (तू) क्यों संसाररूपी गर्त (गढे) में डालता है ? ऐसा करनेसे तेरा पुत्रका शोक न जावैगा (कामकी उत्पत्ति मनसे सूचित करके उसे मनका पुत्र ठहराया, इस हेतु शंकरसे स्वभाव ही मनकी शत्रुता होनी चाहिये क्योंकि कामको शंकरने दग्ध किया है, तात्पर्य यह कि, सदा शिवसे तो तेरा वश चलता ही नहीं इससे तू उनके भक्तको दुःख देता है परन्तु इस प्रकार पलटा लेनेसे पुत्रका शोक न जायगा) ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

मरकतमणिमेदिनीधरो वा तरुणतरस्तरुरेष वा तमालः ॥ रघुपतिमवलोक्य तत्र दूरादृषिनिकरै-रिति संशयः प्रपेदे ॥ ३४ ॥

" मरकतमणिरूपी (अल्प) पर्वत शिखर है क्या ? अथवा तरुणतर तमाल वृक्ष है क्या ! " इस प्रकार रामचन्द्रको वहां दूरसे अवलोकन कर ऋषियोंको संशय हुआ ॥

तरणितनया किं स्यादेषा न तोयमयी हि सा मरकत-मणिज्योत्स्ना वा स्यान्न सा मधुरा कुतः ॥ इति रघुपतेः कायच्छायाविलोकनतत्परैरुदितकुतुकैः कैःकैरादौ न संदिदिहे जनैः ॥ ३५ ॥

" यह यमुना है क्या ? न (यमुना तो नहीं) वह तो जलमयी है; (फिर) मरकतमणिकी दीप्ति तो नहीं ? न (वह भी नहीं क्योंकि यह तो माधुर्य युक्त है और) वह अर्थात् मरकतमणि दीप्ति मधुर नहीं है, " इस प्रकार रामचन्द्रके स्वरूपकी छायाके अवलोकनमें तत्पर और कौतुक युक्त होते हुए कौन कौन मनुष्योंने आदिमें संदेह नहीं किया । (यह संदेह अलंकार है) ॥

चपला जलदाच्युता लता वा तरुमुख्यादिति संशये निमग्नः ॥ गुरुनिःश्वसितैः कपिर्मनीषी निरणैषीदथ तां वियोगिनीति ॥ ३६ ॥

---

१ ' पुष्पिताग्रा ' वृत्त । २ ' हरिणी ' छंद । ३ ' मालयभारा ' छंद ।

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

माक्षिक [शहत,] द्राक्षा [दाख] साक्षात् अमृत व स्त्रीका अधरोष्ठरस भी कदाचित् चाहै किसीको प्रमुदित न करै (परन्तु) जगन्नाथकी काव्यसे जो आनंदित नहीं होते वे जडबुद्धि (इस संसार) में जीते ही मृतकके समान हैं ॥

निर्माणे यदि मार्मिकोऽसि नितरामत्यंतपाकद्रव-
न्मृद्वीकामधुमाधुरीमदपरीहाराधुराणां गिराम् ॥
काव्यं तर्हि सखे सुखेन कथय त्वं संमुखे मादृशां
नो चेद्दुष्कृतमात्मना कृतमिव स्वांताद्बहिर्मा कृथाः ४१

हे मित्र ! अत्यंत परिपक्वभावको प्राप्त होनेवाली, द्रवीभूत द्राक्षाके रसकी माधुरीके मदको परिहार करनेमें समर्थ, वाणीके निर्माणमें यदि तू मर्मज्ञ है तो मेरे सन्मुख सुखसे काव्य कथन कर; (परंतु) जो मनमें (किसी प्रकारका) गर्व हो तो (उसे) स्वमुखसे बहिष्कृत न होने दे (मेरे सन्मुख चाहै तो काव्यालाप कर परन्तु यदि तेरे मनमें स्वकाव्य विषयक कुछ भी अभिमान होवै तो तेरा कहना उचित नहीं अर्थात् जो तू वैसा करैगा तो मेरे द्वारा तेरा पराभव होगा एक मात्र केवल मेरी काव्य सर्वोत्कृष्ट है यह भाव) ॥

मद्वाणि मा कुरु विषादमनादरेण मात्सर्यमग्नमनसां
सहसा खलानाम् ॥ काव्यारविंदमकरंदमधुव्रता-
नामास्येषु धास्यतितमां कियतो विलासान् ॥ ४२ ॥

हे मद्वाणि ! मत्सरभावपूरित खलोंके सहसा अनादरसे तू विषाद मत कर, काव्यारविंदमकरंदके (लोभी, रसिकजनरूपी)

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

मधुव्रतोंके मुखमें तू अनेक प्रकारके विलासोंको धारण करैगी ! (रसज्ञ तेरा महान् आदर करैंगे यह भाव)॥

विद्वांसो वसुधातले परवचःश्लाघासु वाचंयमा भूपालाः कमलाविलासमदिरोन्मीलन्मदाघूर्णिताः ॥ आस्ये धास्यति कस्य लास्यमधुनाधन्यस्य कामालस-स्वर्वामाधरमाधुरीमधरयन् वाचां विपाको मम ॥४३॥

धरातलमें विद्वज्जन अन्यकृत काव्यकी प्रशंसामें मूक (हो रहे हैं) भूपाल, संपत्तिरूपी मदिराके मदसे भ्रमिष्ट (भावको प्राप्त हुए हैं, अत एव काव्यके प्रकाश होनेके दोनों मार्ग न रह-नेसे कामालस अप्सराओंके अधरकी माधुर्यताको जीतनेवाला मेरी वाणीका विपाक (फल–अर्थात् कवित्व) इस समयमें किस धन्यके मुखमें नृत्य करैगा ? ॥

धुर्यैरपि माधुर्यैर्द्राक्षाक्षीरेक्षुमाक्षिकादीनाम् ॥
वंद्यैव माधुरीयं पंडितराजस्य कवितायाः ॥ ४४ ॥

पंडितराज (जगन्नाथ) की कविताकी माधुरी. द्राक्षा, दुग्ध, ईख, माक्षिक (शहत) इत्यादिककी महान् माधुर्यसेभी वंदन किये जानेके योग्य है (इन पदार्थोंसे भी विशेष मधुर है यह भाव) ॥

शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधयः सर्वेऽपि संभाविता दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः ॥ संप्रत्युज्झि-तवासनं मधुपुरीमध्ये हरिः सेव्यते सर्वं पंडितराज-राजितिलकेनाकारि लोकाधिकम् ॥ ४५ ॥

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

पंडितराजश्रेणीके तिलकभूत (जगन्नाथराय) ने सर्व लोकाधिक कृत्य किये—शास्त्रोंका अध्ययन किया, (सन्ध्या वंदनादिक) सकल नित्यविधि भी साधे, युवावस्था दिल्लीनरेशके हस्तपल्लव तले बिताई, (और) अब इस समय विषयवासनाओंको त्याग मथुराक्षेत्रमें भगवान् नारायणका सेवन करते हैं ॥

दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यंतीति शंकया ॥
मदीयपद्यरत्नानां मंजूषैषा मया कृता ॥ ४६ ॥

इति श्रीमत्पंडितराजजगन्नाथविरचिते भामिनीविलासे
शांतो नाम चतुर्थो विलासः ॥ ४ ॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः ।

दुष्टरंडापुत्र (इनका) हरण करेंगे इस शंकासे अपने पद्यरूपी रत्नोंकी यह पेटी मैंने बनाई ॥

भामिनीविलासके शांत नाम चतुर्थ विलासका
प्राकृत भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥

श्रीलक्ष्मीधर-विद्यामन्दिर
देवप्रयाग (गढवाल-हिमालय)
व्यवस्थापक- पं. चक्रधरजोशी

१ यौवनकालमें मैंने अनेक भोग भी भोगे यह सूचित किया ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " स्टीम् प्रेस, कल्याण—मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास, " श्रीवेंकटेश्वर " स्टीम् प्रेस—मुंबई.

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri

CC-0 Pt. Chakradhar Joshi and Sons, Dev Prayag. Digitized by eGangotri